स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 ई. में कलकत्ता में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र था। इनके पिता पेशे से वकील थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद इनके मन में अध्यात्म एवं दर्शन की उदात्त चेतना प्रखर हो गई। स्वामी रामकृष्ण को इन्होंने अपना गुरु बनाया। इन्होंने भारतीय दर्शन, ज्ञान तथा जीवन मूल्यों को सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित-प्रसारित किया। इनके विचारों में मानवीय उत्थान तथा समता के संदेश निहित हैं। इन्होंने कर्मयोग, प्रेमयोग, भगवान कृष्ण और भगवद्गीता, हिन्दू धर्म के पक्ष में आत्मतत्त्व शीर्षक से अनेक पुस्तकें लिखीं। अपने अनेक सम्भाषणों में इन्होंने अपने विचारों को व्यक्त किया है।

निधन : 4 जुलाई, 1902

युवाओं से

रचना सार : 'युवाओं से' शीर्षक पाठ में विवेकानन्द के उन विचारों का समावेश है जो युवाओं के लिए उन्होंने विशेष रूप से उद्गारित किया है। वे देश के उत्थान के लिए युवकों में से ही कार्यकर्ताओं का चयन करना चाहते थे। उनकी मान्यता है कि भारतवर्ष का पुनरुत्थान शारीरिक शक्ति से नहीं बल्कि आत्मा की शक्ति से होगा। नवीन भारत सभी वर्गों, स्थानों तथा क्षेत्रों से उदित होगा। यदि भारत नहीं रहेगा तो सदाचारपूर्ण जीवन का ही संसार से विनाश हो जाएगा। त्याग और सेवा भारत के आदर्श हैं।...मरते दम तक गरीबों तथा पददलितों के लिए सहानुभूति रखनी चाहिए। निडर होकर उनके उत्थान का कार्य करना चाहिए। मनुष्य को सबसे पहले मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए। सुधार की अपेक्षा स्वाभाविक उन्नति अधिक महत्त्वपूर्ण है। बुद्धि और विचारशक्ति से बड़ी शक्ति हृदय की महाशक्ति है। प्रेम हृदय से ही उत्पन्न होता है। नास्तिक वह नहीं है जो ईश्वर को नहीं मानता बल्कि वह है जो स्वयं को नहीं मानता। नवयुवकों को शक्तिशाली बनना चाहिए। ज्ञान का आत्मसात करते हुए देश सेवा के लिए संगठन बनाना चाहिए नेतागीरी के लिए नहीं।

Scanned by CamScanner

युवाओं से

मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्ताओं का संग्रह करूँगा। वे सिंहविक्रम से देश की यथार्थ उन्नति सम्बन्धी सारी समस्या का समाधान करेंगे। वर्तमान काल में अनुष्ठेय आदर्श को मैंने एक निर्दिष्ट रूप में व्यक्त कर दिया है और उसको कार्यान्वित करने के लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है।...वे एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र का विस्तार करेंगे-और इस प्रकार हम धीरे-धीरे समग्र भारत में फैल जाएँगे।

भारतवर्ष का पुनरुत्थान होगा, पर वह शारीरिक शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शान्ति और प्रेम की ध्वजा से...मैं अपने सामने यह एक सजीव दृश्य अवश्य देख रहा हूँ कि हमारी यह वृद्ध माता पुन: एक बार जाग्रत होकर अपने सिंहासन पर नवयौवनापूर्ण और पूर्व की अपेक्षा अधिक महामहिमान्वित होकर विराजी है। शान्ति और आशीर्वाद के वचनों के साथ सारे संसार में उसके नाम की घोषणा कर दो।

देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानो हिमालय के प्राणप्रद वायु-स्पर्श से मृत देह के शिथिलप्राय अस्थि-मांस तक में प्राण-संचार हो रहा है। जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही है। जो अन्धे हैं, वे ही देख नहीं सकते और जो विकृतबुद्धि हैं वे ही समझ नहीं सकते कि हमारी मातृ-भूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर सो भी नहीं सकती। कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती, क्योंकि यह असाधारण शक्ति का देश अब जागकर खड़ा हो रहा है।

एक नवीन भारत निकल पड़े-निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुवा, मोची, मेहतरों की झोंपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से, निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।

क्या भारत मर जाएगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जाएगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जाएगा, धर्मों के प्रति

सारी मधुर सहानुभूति नष्ट हो जाएगी, सारी भावुकता का भी लोप हो जाएगा और उसके स्थान में कामरूपी देव और विलासितारूपी देवी राज्य करेगी। धन उनका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता, ये ही उनकी पूजापद्धति होगी और मानवता उनकी बलिसामग्री हो जाएगी। ऐसी दुर्घटना कभी हो नहीं सकती।

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं : त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए और शेष सब अपने आप ठीक हो जाएगा। तुम काम में लग जाओ, फिर देखोगे इतनी शक्ति आएगी कि तुम उसे सँभाल न सकोगे। दूसरों के लिए रत्ती-भर सोचने, काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्ती-भर सोचने से धीरे-धीरे हृदय में सिंह का-सा बल आ जाता है। तुम लोगों से मैं इतना स्नेह करता हूँ, परन्तु यदि तुम लोग दूसरों के लिए परिश्रम करते-करते मर भी जाओ तो भी यह देखकर मुझे प्रसन्नता ही होगी।

केवल वही व्यक्ति सबकी अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया नि:स्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जाएगा तो वह भी एक बुद्ध बन जाएगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सकती है।

जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस आदमी को विश्वासघातक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता। वे लोग जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और अब ठाट-बाट से अकड़कर चलते हैं—यदि उन बीस करोड़ देशवासियों के लिए जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुए हैं, कुछ नहीं करते, तो वे घृणा के पात्र हैं।

हमेशा बढ़ते चलो! मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति-यही हमारे आदर्श वाक्य हैं। वीर युवको! बढ़े चलो। ईश्वर के प्रति आस्था रखो। किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं, उससे कुछ नहीं होता। दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो—वह अवश्य मिलेगी।...युवको! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ।...प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे, जो दिनोंदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। यदि तुम सचमुच मेरी सन्तान हो, तो तुम किसी वस्तु से न डरोगे, न किसी बात पर रुकोगे। तुम सिंहतुल्य होगे। हमें भारत को और पूरे संसार को जगाना है।

तुम तो ईश्वर की सन्तान हो, अमर आनन्द के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अतएव तुम कैसे अपने को जबरदस्ती दुर्बल कहते हो? उठो, साहसी

Scanned by CamScanner

बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर लो—यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है।

एक बात पर विचार करके देखिए मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्य को बनाते हैं? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्यों को पैदा करता है। मनुष्य कीर्ति और नाम पैदा करता है या कीर्ति और नाम मनुष्य पैदा करते हैं? मेरे मित्रो, पहले मनुष्य बनिए तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी। परस्पर घृणित द्वेषभाव को छोड़िए,...और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्धीय का अवलम्बन कीजिए। आपने मनुष्य योनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ जाइए।

जाति तो व्यक्तियों की केवल समष्टि है। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को उपयुक्त बनाने के सिवाय मेरी और कोई उच्चाकांक्षा नहीं है। अपनी चिन्ता हमें स्वयं ही करनी है। इतना तो हम कर ही सकते हैं।...क्योंकि दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने-आपको पवित्र बना लें। आओ, हम अपने-आपको पूर्ण बना लें।

केवल मनुष्यों की आवश्यकता है; और सब कुछ हो जाएगा, किन्तु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और अन्त तक कपटरहित नवयुवकों की। इस प्रकार के सौ नवयुवकों से संसार के सभी भाव बदल दिए जा सकते हैं और सब चीजों की अपेक्षा इच्छाशक्ति का अधिक प्रभाव है। इच्छाशक्ति के सामने और सब शक्तियाँ दब जाएँगी, क्योंकि इच्छाशक्ति साक्षात् ईश्वर से निकलकर आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है।

मैंने तो इन नवयुवकों का संगठन करने के लिए जन्म लिया है। यही क्या, प्रत्येक नगर में सैकड़ों और मेरे साथ सम्पिलित होने को तैयार हैं; और मैं चाहता हूँ कि इन्हें अप्रतिहत गतिशील तरंगों की भाँति भारत में सब ओर भेजूँ, जो दीन-हीनों एवं पददलितों के द्वारा परसुख, नैतिकता, धर्म एवं शिक्षा उड़ेल दें और इसे मैं करूँगा, या मरूँगा।

मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश "तुम्हें इस भाँति चलना होगा, दूसरे प्रकार नहीं," मढ़ने का साहस नहीं कर सकता। मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ जो श्री रामचन्द्र जी के पुल बनाने के समय थोड़ा बालू देकर अपना भाग पूरा कर सन्तुष्ट हो गई थी। यही मेरा भी भाव है।

लोग स्वदेश-भक्ति की चर्चा करते हैं। मैं स्वदेश-भक्ति में विश्वास करता हूँ पर स्वदेश-भक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचारशक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हमको थोड़ी दूर अग्रसर करा देती है और वहीं ठहर जाती है। किन्तु हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है, प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत् के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अत: मेरे भावी संस्कार को, मेरे भावी देशभक्तो, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय से समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें पशुतुल्य हो गई हैं? क्या हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भाँति भूखों मरते जा रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञात के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझकर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम कभी इससे अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना तुम्हारे रक्त में मिलकर तुम्हारी धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिली है? क्या उसने कभी तुम्हें पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें निर्धनता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम, यश, सम्पत्ति यहाँ तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गये हो? यदि हो, तो जानो कि तुमने स्वदेश-भक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है। जैसा तुममें से अधिक लोग जानते हैं, मैं धार्मिक महासभा के लिए अमेरिका नहीं गया था, किन्तु देश के जनसाधारण की दुर्दशा के प्रतिकार करने का भूत मुझमें-मेरी आत्मा में घुस गया था। मैं अनेक वर्ष तक समग्र भारत में घूमता रहा, पर अपने स्वदेशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई अवसर नहीं मिला, इसीलिए मैं अमेरिका गया। तुममें से अधिकांश जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धार्मिक महासभा की कौन परवाह करता था? यहाँ मेरे रक्त-मांसस्वरूप जनसाधारण की दशा हीन होती जाती थी, उनकी कौन खबर ले? स्वदेशहितैषी होने की यह मेरी पहली सीढ़ी है।

उठो, जागो, स्वयं जगकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत—उठो, जागो और तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।"

जो अपने आपमें विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। प्राचीन धर्मों ने कहा है, वह नास्तिक है जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। नया धर्म कहता है, वह नास्तिक है जो अपने आपमें विश्वास नहीं करता।

यह एक बड़ी सच्चाई है; शक्ति ही जीवन और कमजोरी ही मृत्यु है। शक्ति परम सुख, जीवन अजर-अमर है; कमजोरी कभी न हटने वाला बोझ और यंत्रणा है; कमजोरी ही मृत्यु है।

Scanned by CamScanner

उपनिषदों में यदि कोई ऐसा शब्द है, जो वज्रवेग से अज्ञानराशि के ऊपर पतित होता है, उसे बिल्कुल उड़ा देता है, तो वह है 'अभी:' निर्भयता। संसार को यदि किसी एक धर्म की शिक्षा देनी चाहिए, तो वह है 'निर्भीकता'। यह सत्य है कि इस ऐहिक जगत में अथवा आध्यात्मिक जगत में भय ही पतन तथा पाप का कारण है। भय से ही दुख होता है, यह मृत्यु का कारण है तथा इसी के कारण सारी बुराई तथा पाप होता है।

सबसे पहले हमारे तरुणों को मजबूत बनना चाहिए। धर्म इसके बाद की वस्तु है। मेरे तरुण मित्रो! शक्तिशाली बनो, मेरी तुम्हें यही सलाह है। तुम गीता के अध्ययन की अपेक्षा फुटबाल के द्वारा ही स्वर्ग के अधिक समीप पहुँच सकोगे। ये कुछ कड़े शब्द हैं, पर मैं उन्हें कहना चाहता हूँ क्योंकि तुम्हें प्यार करता हूँ कि काँटा कहाँ चुभता है। मुझे इसका कुछ अनुभव है। तुम्हारे स्नायु और मांसपेशियाँ अधिक मजबूत होने पर तुम गीता अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे। तुम अपने शरीर में शक्तिशाली रक्त प्रवाहित होने पर, श्रीकृष्ण के तेजस्वी गुणों और उनकी अपार शक्ति को अधिक समझ सकोगे। जब तुम्हारा शरीर मजबूती से तुम्हारे पैरों पर खड़ा रहेगा और तुम अपने को 'मनुष्य' अनुभव करोगे, तब तुम उपनिषद और आत्मा की महानता को अधिक अच्छा समझ सकोगे।

हम देख सकते हैं कि एक तथा दूसरे मनुष्य के बीच अन्तर होने का कारण उसका अपने आपमें विश्वास होना और न होना ही है। अपने आपमें विश्वास होने से सब कुछ हो सकता है। मैंने अपने जीवन में इसका अनुभव किया है, अब भी कर रहा हूँ और जैसे-जैसे मैं बड़ा होता जा रहा हूँ, मेरा विश्वास और भी दृढ़ होता जा रहा है।

प्रत्येक आत्मा ही अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्त:प्रकृति, दोनों का नियतन कर, इस अन्तर्निहित ब्रह्म-स्वरूप को अभिव्यक्त करना ही जीवन का ध्येय है। कर्म, भक्ति, योग या ज्ञान के द्वारा इनमें से किसी एक के द्वारा या एक से अधिक के द्वारा, या सबके सम्मिलन के द्वारा यह ध्येय प्राप्त कर लो और मुक्त हो जाओ। यही धर्म का सर्वस्व है। मतमतांतर, विधि या अनुष्ठान, ग्रंथ, मन्दिर—ये सब गौण हैं। यदि ईश्वर है, तो हमें उसे देखना चाहिए, यदि आत्मा है तो हमें उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर लेनी चाहिए, अन्यथा उन पर विश्वास न करना ही अच्छा है। ढोंगी बनने की अपेक्षा स्पष्ट रूप से नास्तिक बनना अच्छा है।

एक विचार ले लो। उसी एक विचार के अनुसार अपने जीवन को बनाओ, उसी को सोचो, उसी का स्वप्न देखो और उसी पर अवलम्बित रहो। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, स्नायुओं और शरीर के प्रत्येक भाग को उसी विचार से ओत-प्रोत होने दो और दूसरे सब विचारों को अपने से दूर रखो। यही सफलता का रास्ता है और यही वह मार्ग है जिसने महान् धार्मिक पुरुषों का निर्माण किया है।

मैं अभी तक के सभी धर्मों को स्वीकार करता हूँ और उन सबकी पूजा करता हूँ; मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ईश्वर की उपासना करता हूँ; वे स्वयं चाहे किसी भी रूप में उपासना करते हों! मैं मुसलमानों की मसजिद में जाऊँगा, मैं ईसाइयों के गिरिजा में क्रास के सामने घुटने टेककर प्रार्थना करूँगा, मैं बौद्ध-मन्दिरों में जाकर बुद्ध और उनकी शिक्षा की शरण लूँगा। मैं जंगल में जाकर हिन्दुओं के साथ ध्यान करूँगा, जो हृदयस्थ ज्योतिस्वरूप परमात्मा को प्रत्यक्ष करने में लगे हुए हैं।

शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों। यदि आप केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हैं, तो आप पूरे ग्रंथालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हैं।

अपने भाइयों का नेतृत्व करने का नहीं, वरन् उनकी सेवा करने का प्रयत्न करो। नेता बनने की इस क्रूर उन्मत्तता ने बड़े-बड़े जहाजों को इस जीवन रूपी समुद्र में डुबो दिया है।

हमारे स्वभाव में संगठन का सर्वथा अभाव है, पर इसे हमें अपने स्वभाव में लाना है। इसका महान रहस्य है ईर्ष्या का अभाव। अपने भाइयों के मत से सहमत होने को सदैव तैयार रहो और हमेशा समझौता करने का प्रयास करो। यही है संगठन का पूरा रहस्य।

मैं तुम सबसे यही चाहता हूँ कि तुम आत्मप्रतिष्ठा, दलबन्दी और ईर्ष्या को सदा के लिए छोड़ दो। तुम्हें पृथ्वी माता की तरह सहनशील होना चाहिए। यदि तुम ये गुण प्राप्त कर सको, तो संसार तुम्हारे पैरों पर लोटेगा।

Scanned by CamScanner

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 ई. को बलिया जिले में हुआ था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी संस्कृत तथा ज्योतिष के विद्वान थे। आपने सन् 1930 में काशी विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य तथा इंटर की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के शीर्ष साहित्यकारों में हैं। वे उच्च कोटि के निबन्धकार, उपन्यास लेखक, आलोचक, चिन्तक तथा शोधकर्ता रहे हैं। उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए भारत सरकार ने 1957 में उन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किया।

'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्र लेख', 'पुनर्नवा' (उपन्यास); 'विचारप्रवाह', 'कुटज', 'अशोक के फूल', 'विचार-विमर्श', 'विचार और वितर्क' आदि (निबन्ध-संग्रह) तथा 'कबीर', 'साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का अधिकार', 'सन्देश रासक' आदि (आलोचना-ग्रंथ) प्रसिद्ध हैं।

निधन : 1979 ई.

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

रचना सार : 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का ललित निबन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने अहिंसा का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए मानव की पाशवी वृत्ति को हास्य-व्यंग्य रूप में उजागर करने का प्रयास किया है। नाखून मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। प्राचीन समय में मनुष्य को नाखून की आवश्यकता थी, उसके द्वारा वह शिकार करता था किन्तु आज उसकी आवश्यकता नहीं रही। मनुष्य के शरीर के अनावश्यक अंग झड़ गए फिर भी नाखून आवश्यकता न होने पर आज भी बढ़ रहे हैं, जोकि मनुष्य के भीतर छिपी हिंसा के प्रतीक हैं। मनुष्य को किस ओर बढ़ना है, वे अपने निबन्ध में स्पष्ट करते हैं। 'मनुष्य का विशिष्ट महत्त्व प्रेम में, मैत्री में, अपने सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से देने में है।' जिस दिन मनुष्य के भीतर की हिंसा समाप्त हो जाएगी नाखून भी नहीं बढ़ेंगे या नाखून बढ़े भी तो मनुष्य उनको बढ़ने नहीं देगा, अर्थात् हिंसा को बढ़ावा नहीं देगा। यही प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाक्ष है, जो पाठक को पारस्परिक वैमनस्य का परित्याग कर आपस में प्रेम एवं सौहार्द्र को बढ़ावा देने की प्रेरणा प्रदान करता है। हास्य-व्यंग्य प्रधान हल्की-फुल्की भाषा-शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन पड़ी है।

Scanned by CamScanner

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देनेवाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ लिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून क्यों बढ़ जाते हैं। बच्चे कुछ दिन अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अकसर उन्हें डाँटा करते हैं, पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ ही लाख वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर वह धीरे-धीरे अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचन्द्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के हथियार बनाए। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार पाए। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्य के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीजें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गन्धर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली थी। इतिहास आगे बढ़ा। पलीतेवाली बन्दूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़-भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नखधर मनुष्य अब एटम बम

पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है। अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नख-दन्तावलम्बी जीव हो—पशु के साथ एक ही सतह पर विचरनेवाले और चरनेवाले।

ततः किम्। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन, कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि यह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कमबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अन्धे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुणा शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है? वह तो उसका नवीनतम रूप है! मैं मनुष्य के नाखूनों की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवन्त प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जमकर सँवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चन्द्राकार, दन्तुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक [मोम और अलत्तक (आलता)] से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसन्द करते थे और दक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचनेवाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव-शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास-जन्य वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही और शरीर के अनजाने में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उनमें से एक

Scanned by CamScanner

है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उगना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजानी स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटनेवाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचता तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे और कोई रास्ता खोजना चाहिए। शस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है—किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर, अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है—जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ—जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी हैं। भारतीय भाषाओं में प्राय: ही अंग्रेजी के 'इंडिपेंडेंस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेजी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेंस' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेंस' का अर्थ है अनाधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है—अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेंडेंस' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेंस' को अनाधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किए—स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता—उन सब में 'स्व' का बन्धन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परम्परा ही अनजाने में हमारी भाषा द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणी-विज्ञान की बात फिर याद आती है—सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज्य होने के बाद स्वभावत: ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाए। हमारे देश के लोग पहली बार यह सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातोंरात अनजान जंगल में पहुँचकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों। हमारी परम्परा महिमामयी, उत्तराधिकारी विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं।

हमारे अनजाने में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनाधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बन्धन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने-आप पर अपने-आपके द्वारा लगाया हुआ बन्धन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। अपने बच्चे को गोद में दबाए रहनेवाली 'बन्दरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परन्तु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सर्वस्व खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे ही नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते, भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं; जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से, अनेक ओर से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बन्धनों में अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है? आहार, निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरों के सुख-दुख के प्रति संवेदना है; श्रद्धा है, तप है, त्याग है। मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बन्धन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़नेवाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी खास जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्य मात्र का धर्म है। महाभारत में इसलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है—

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च॥

Scanned by CamScanner

अन्यत्र इसमें निरन्तर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन 120/10)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म-निर्मित बन्धन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजाने में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है, और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा—बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा—प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बन्धन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई। आदमी के नाखून बढ़ाने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ—बूढ़े ने कितनी गहराई में बैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बन्द हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मरणास्त्रों का प्रयोग भी बन्द कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है। अपना आदर्श है। वृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्र का बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास—बिना सिखाए—आ जाती है, वह पशुत्व की द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अन्तर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचय से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है जिसे उसने बड़े आडम्बर के साथ सफलता नाम दे रखा है। परन्तु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में

है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखून का बढ़ना मनुष्य की उस अन्ध-सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस 'स्व'-निर्धारित आत्म-बन्धन का फल है जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाता है।

कमबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

Scanned by CamScanner

निशा नन्दिनी

निशा नन्दिनी वर्तमान समय की महत्त्वपूर्ण लेखिका हैं। उनका जन्म 13 सितम्बर, 1962 को हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इलाहाबाद उत्तर प्रदेश में हुई। उनके पति का नाम श्री लक्ष्मीप्रसाद है। उनकी बी.ए. और एम.ए. की शिक्षा रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली से हुई। उन्होंने हिन्दी के साथ समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र में भी एम.ए. किया। निशा नन्दिनी ने असम के तीनसुकिया में अनेक संस्थाओं में अध्यापन का कार्य किया। वह 36 वर्षों से तिनसुकिया में निवास कर रही हैं। वर्तमान समय में वह तिनसुकिया के 'असम हाईट्स`` स्कूल' में सलाहकार व कौंसलर के रूप में कार्यरत हैं। निशा नन्दिनी की 45 रचनाएँ प्रकाशित हैं। 'भाव गुल्म', 'शब्दों का आईना', 'आगाज', 'जुनून', 'कोश कागज', 'बोलती दीवारें', 'दिल की जुबाँ से', 'तार पर टँगी बूँदें' आदि काव्य-संग्रह हैं। 'अस्तित्व' यह उनका कथा-संग्रह है। 'भारत की शान है असम', 'मनुष्य के रूप में हम क्या कर रहे हैं', 'भारतीय पर्वों का महत्त्व' यह उनके निबन्ध-संग्रह हैं। उन्हें मौलिक साहित्य लेखन के लिए कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। वह अभी भी साहित्य सृजन में सक्रिय हैं।

वीरांगना कनकलता बरुआ

रचना सार : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सभी भारतीय के लिए गौरव का गान है। इस स्वतंत्रता आन्दोलन में सभी स्त्री-पुरुष छोटे-बड़े लोगों ने अपना मौलिक योगदान दिया है। इन सभी लोगों का योगदान कभी उल्लेखित किया गया है कभी नहीं। अनेक अनुल्लेखित व्यक्तियों ने अपने प्राणों का बलिदान स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दिया है। ऐसे ही असम प्रदेश में इनका नाम है कनकलता बरुआ। निशा नन्दिनी ने स्वतंत्रता संग्राम में अतुलनीय त्याग, बलिदान देनेवाली कनकलता बरुआ के शौर्य गाथा को यहाँ प्रस्तुत किया है। यह जीवनीपरक लेख बहुत ही प्रभावशाली तथा वीरभावना से भरा हुआ है।

जीवनी—वीरांगना कनकलता बरुआ

कनकलता बरुआ का जन्म 22 दिसम्बर, 1924 को असम के कृष्णकान्त बरुआ के घर में हुआ था। ये बारंगबाड़ी गाँव के निवासी थे। इनकी माता का नाम कर्णेश्वरी देवी था। कनकलता मात्र पाँच वर्ष की हुई थी कि उनकी माता की मृत्यु हो गई। उनके पिता कृष्णकान्त ने दूसरा विवाह किया, किन्तु सन् 1938 ई. में उनका भी देहान्त हो गया। कुछ दिन पश्चात् सौतेली माँ भी चल बसी। इस प्रकार कनकलता अल्पवय में ही अनाथ हो गई। कनकलता के पालन-पोषण का दायित्व उसकी नानी को सँभालना पड़ा। वह नानी के साथ घर-गृहस्थी के कार्यों में हाथ बँटाती और मन लगाकर पढ़ाई भी करती थी। इतने विषम पारिवारिक परिस्थितियों के बावजूद कनकलता का झुकाव राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की ओर होता गया।

जब मई 1931 ई. में गमेरी गाँव में रैयत सभा आयोजित की गई, उस समय कनकलता केवल सात वर्ष की थी। फिर भी सभा में अपने मामा देवेन्द्र नाथ और यदुराम बोस के साथ उसने भी भाग लिया। उक्त सभा के आयोजन का प्रबन्ध विद्यार्थियों ने किया था। सभा के अध्यक्ष प्रसिद्ध नेता ज्योति प्रसाद अग्रवाल थे। उनके अलावा असम के अन्य प्रमुख नेता भी इस सभा में सम्मिलित हुए थे। ज्योति प्रसाद आगरवाला राजस्थानी थे। वे असम के प्रसिद्ध कवि और नवजागरण के अग्रदूत थे। उनके द्वारा असमिया भाषा में लिखे गीत घर-घर में लोकप्रिय थे। आगरवाला के गीतों से कनकलता भी प्रभावित और प्रेरित हुई। इन गीतों के माध्यम से कनकलता के बाल-मन पर राष्ट्र-भक्ति का बीज अंकुरित हुआ।

सन् 1931 के रैयत अधिवेशन में भाग लेने वालों को राष्ट्रद्रोह के आरोप में बंदी बना लिया गया। इसी घटना के कारण असम में क्रान्ति की आग चारों ओर फैल गई। महात्मा गांधी के 'असहयोग आन्दोलन' को भी उससे बल मिला। मुम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में 8 अगस्त, 1942 को 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हुआ। यह ब्रिटिश के विरुद्ध देश के कोने-कोने में फैल गया। असम के शीर्ष नेता मुम्बई से लौटते ही पकड़कर जेल में डाल दिये गये। गोपीनाथ बरदलै सिद्धनाथ शर्मा, मौलाना तैयबुल्ला विष्णुराम मेधि आदि को जेल में बंद कर दिए जाने पर मोहिकान्त

Scanned by CamScanner

दास, गहन चन्द्र गोस्वामी, महेश्वर बरा तथा अन्य लोगों ने आन्दोलन की बागडोर सँभाली। अन्त में ज्योति प्रसाद आगरवाला को नेतृत्व सँभालना पड़ा। उनके नेतृत्व में गुप्त सभा की गई। फलत: आंदोलन को नई दिशा मिली। पुलिस के अत्याचार बढ़ गए और स्वतंत्रता सेनानियों से जेलें भर गईं। कई लोगों को पुलिस की गोली का शिकार बनना पड़ा। शासन के दमन चक्र के साथ आन्दोलन भी बढ़ता गया।

एक गुप्त सभा में 20 सितम्बर, 1942 ई. को तेजपुर की कचहरी पर तिरंगा झंडा फहराने का निर्णय लिया गया। उस समय तक कनकलता विवाह के योग्य हो चुकी थीं। उनके अभिभावक उनका विवाह करने को उत्सुक थे। किन्तु वह अपने विवाह की अपेक्षा भारत की आजादी को अधिक महत्त्वपूर्ण मान चुकी थीं। भारत की आजादी के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर थीं। 20 सितम्बर, 1942 के दिन तेजपुर से 82 मील दूर गहपुर थाने पर तिरंगा फहराया जाना था। सुबह-सुबह घर का काम समाप्त करने के बाद वह अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ीं। कनकलता आत्म बलिदानी दल की सदस्या थीं। गहपुर थाने की ओर चारों दिशाओं से जुलूस उमड़ पड़ा था। उस आत्म बलिदानी जत्थे में सभी युवक और युवतियाँ थीं। दोनों हाथों में तिरंगा झंडा थामे कनकलता उस जुलूस का नेतृत्व कर रही थीं। जुलूस के नेताओं को संदेह हुआ कि कनकलता और उसके साथी कहीं भाग न जाएँ। संदेह को भाँप कर कनकलता शेरनी के समान गरज उठी—"हम युवतियों को अबला समझने की मूल मत कीजिए। आत्मा अमर है, नाशवान है तो मात्र शरीर। अत: हम किसी से क्यों डरें?" 'करेंगे या मरेंगे' 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', जैसे नारे से आकाश को गुँजाती हुई थाने की ओर बढ़ चलीं। आत्म बलिदानी जत्था थाने के करीब जा पहुँचा। पीछे से जुलूस के गगनभेदी नारों से आकाश गूँजने लगा। उस जत्थे के सदस्यों में थाने पर झंडा फहराने की होड़-सी मच गई। हर एक व्यक्ति सबसे पहले झंडा फहराने को बेचैन था। थाने का प्रभारी पी.एम. सोम जुलूस को रोकने के लिए सामने आ खड़ा हुआ। कनकलता ने उससे कहा—"हमारा रास्ता मत रोकिए। हम आपसे संघर्ष करने नहीं आए हैं। हम तो थाने पर तिरंगा फहराकर स्वतंत्रता की ज्योति जलाने आए हैं। उसके बाद हम लौट जाएँगे।"

थाने के प्रभारी ने कनकलता को डाँटते हुए कहा कि यदि तुम लोग एक इंच भी आगे बढ़े तो गोलियों से उड़ा दिए जाओगे। इसके बावजूद भी कनकलता आगे बढ़ीं और कहा—"हमारी स्वतंत्रता की ज्योति बुझ नहीं सकती। तुम गोलियाँ चला सकते हो, पर हमें कर्तव्य विमुख नहीं कर सकते।" इतना कह कर वह ज्यों ही आगे बढ़ी, पुलिस ने जुलूस पर गोलियों की बौछार कर दी। पहली गोली कनकलता ने अपनी छाती पर झेली। गोबी बोगी कछारी नामक सिपाही ने चलाई थी। दूसरी गोली मुकुन्द काकोती को लगी, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। इन दोनों की

मृत्यु के बाद भी गोलियाँ चलती रहीं। परिणामत: हेमकान्त बरुआ, खगेंश्वर बरुआ, सुनीश्वर राजखोवा और भोला बरदलै गम्भीर रूप से घायल हो गए।

उन युवकों के मन में स्वतंत्रता की अखंड ज्योति प्रज्वलित थी, जिसके कारण गोलियों की परवाह न करते हुए वे लोग आगे बढ़ते गए। कनकलता गोली लगने पर गिर पड़ी, किन्तु उसके हाथों का तिरंगा झुका नहीं। उसका साहस व बलिदान देखकर युवकों का जोश और भी बढ़ गया। कनकलता के हाथ से तिरंगा लेकर गोलियों के सामने सीना तानकर वीर बलिदानी युवक आगे बढ़ते गये। एक के बाद एक गिरते गए, किन्तु झंडे को न तो झुकने दिया न ही गिरने दिया। उसे एक के बाद दूसरे हाथ में थमाते गए और अन्त में रामपति राजखोवा ने थाने पर झंडा फहरा दिया।

शहीद मुकुन्द काकोती के शव को तेजपुर नगरपालिका के कर्मचारियों ने गुप्त रूप से दाह-संस्कार कर दिया, किन्तु कनकलता का शव स्वतंत्रता सेनानी अपने कंधों पर उठाकर उसके घर तक ले जाने में सफल हो गए। उसका अन्तिम संस्कार बारंगबाड़ी में ही किया गया। अपने प्राणों की आहुति देकर उसने स्वतंत्रता संग्राम में और अधिक मजबूती लाई। स्वतंत्रता सेनानियों में उसके बलिदान से नया जोश उत्पन्न हुआ। इस तरह अनेक बलिदानियों का बलिदान हमारी स्वतंत्रता की नींव के पत्थर हैं। उनके त्याग और बलिदान की बुनियाद पर ही स्वतंत्रता रूपी भवन खड़ा है। बारंगबाड़ी में स्थापित कनकलता मॉडल गर्ल्स हाईस्कूल जो कनकलता के आत्म-बलिदान की स्मृति में बनाया गया है, आज भी यह भवन स्वतंत्रता की रक्षा करने की प्रेरणा दे रहा है।

ऐसी वीरांगना कनकलता बरूआ को शत शत नमन!

Scanned by CamScanner

शिवानी

आधुनिक हिन्दी साहित्य की लेखिका शिवानी का जन्म 18 अक्टूबर 1923 को गुजरात के राजकोट शहर में हुआ। उनका पूरा नाम गोरा पंत शिवानी है। उनके पिता श्री अश्विनी कुमार पांडे राजकोट में राजकुमार कॉलेज के प्रधानाचार्य थे। शिवानी के माता-पिता अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा संगीत प्रेमी थे। शिवानी की प्रारम्भिक शिक्षा रवीन्द्रनाथ टैगोर (ठाकुर) के मार्गदर्शन में शान्तिनिकेतन में हुई। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर उन्हें 'गोरा' नाम से पुकारते थे। शिवानी की किशोरावस्था शान्तिनिकेतन और युवावस्था अपने शिक्षाविद पति के साथ उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में बीती। उनकी मृत्यु 21 मार्च 2003 को दिल्ली में 79 वर्ष की आयु में हुई।

शिवानी ने अपनी पहली रचना बारह वर्ष की अवस्था में लिखी। तब से लेकर मृत्यु तक उनका लेखन कार्य निरन्तर चलता रहा।

प्रकाशित रचनाएँ : 'कृष्णकलि', 'कालिन्दी', 'चल खुसरो घर अपने', 'मयपुरी', 'गेंदा', 'भैरवी' यह उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'झरोखा', 'मृनमाला के हँसि', 'शिवानी की मशहूर कहानियाँ' यह उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। 'एक थी रामरति' यह उनका व्यक्ति चित्र संस्मरण है।

1982 में शिवानी को पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

एक थी रामरती

रचना सार : 'एक थी रामरती' यह शिवानी का व्यक्ति चित्र संस्मरण है। इसमें रामरती नामक एक सेविका के चरित्र को स्मरण किया गया है। एक सामान्य सेविका अपने कर्तव्य कर्म से असामान्य चरित्र की छाप छोड़ती है। रामरती की प्रमाणिकता, शिवानी के परिवार के प्रति समर्पण भाव, सरल स्वभाव, अन्याय के प्रति विरोध संस्मरणीय है। यह रामरती हमें महादेवी वर्मा के संस्मरणों की याद दिलाती है। महादेवी वर्मा की तरह शिवानी भी अपने संस्मरण चरित्र की अमिट छाप पाठकों के हृदय पर छोड़ने में सफल हुई है।

एक थी रामरती

'एक था राजा' कहें या 'घनदर्प-कन्दर्प-सौन्दर्य हृद्यनिरवद्य भूपो वभूव,' अर्थ एक ही होगा, किन्तु जो सहजता 'एक था राजा' में है, वह दूसरी छंदोमयी भाषा के शब्दजाल में नहीं, इसी से लिख रही हूँ, 'एक थी रामरती'—यद्यपि उस नाम के साथ भूतकाल का प्रयोग करने में मुझे वैसा ही कष्ट हो रहा है जैसा किसी प्रियजन को तिलांजलि देने में, उसके नाम के आगे 'प्रेत' शब्द जोड़ने में होता है।

गुरुवर द्विवेदी जी ने अपने एक भाषण में कभी बड़ी महत्वपूर्ण बात कही थी, "आपके इर्द-गिर्द जो जानता है, वह बहुत बड़ी चीज है। उसकी परम्परा महान् है, उसी को आप अपने अध्ययन का प्रधान विषय बनाएँ। आपको इसी जनता के निकट सम्पर्क में रहकर कार्य करना है। आस-पास की जनता की भाषा, विचार, जाति-पाँति, रहन-सहन, धर्म-कर्म सब कुछ के विषय में ज्ञान-संग्रह करने का प्रयत्न कीजिए, पुस्तकालय और संग्रहालय को अपने कार्य का अत्यन्त आवश्यक अंग तो समझिए ही, किन्तु जनता को प्रबुद्ध बनाना आपका काम है। उसे इस योग्य बनाएँ कि वह अपने अतीत को समझ सके, वर्तमान को देख सके और भविष्य को बना सके। अर्थात् जनता से ही सीखें, उसी को सिखाएँ।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि असंख्य वाचनालय हमें मानवता का वह पाठ पढ़ाने में सक्षम नहीं हो सकते, जो पाठ हमें हमारे पास की जनता अनायास ही पढ़ा जाती है। अपने दीर्घ जीवन के अनेकानेक रहस्यमय कोष्ठ-प्रकोष्ठों की परिक्रमाएँ मुझे कभी ऐसी ही अनूठी अभिज्ञताएँ थमा गई हैं। जीवन में अनेक उदार कृति गुरुजनों की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, किन्तु कभी-कभी लगता है, जीवन के जो अनुभूत, मृत्युंजयी टोटके अपढ़ या सामान्य शिक्षित जनता ने थमाये, जीवन की दुरूह पगडंडियों को पराजित करने की क्षमता उन्हीं से प्राप्त की। आज, जब एक ऐसी ही अपढ़ सरल, विलक्षण सद्य:दिवंगता सेविका को, कृतज्ञ करपुट श्रद्धासुमन अर्पित करने को तत्पर होते हैं तो एक पल को वह आनन्दी हंसमुख चेहरा, कंठ वाष्प स्तम्भित कर देता है। दुबली-पतली देह, वजन कुल 29 किलो, जिसे यत्न से सींचने पर भी कभी वजन तौलने की मशीन की

Scanned by CamScanner

सुई मैं रंचमात्र भी आगे नहीं खिसका पाई किन्तु प्राणशक्ति उतनी ही वजनदार। कभी-कभी आश्चर्य होता था कि उस मुट्ठीभर देह में इतनी शक्ति आती कहाँ से है! उसके प्रेममय सहज हृदय की सरलता देखकर सहसा विश्वास नहीं होता था कि इस कुटिल युग में भी किसी का हृदय इतना निष्पकट, ऐसा निष्कलुष और निःस्वार्थ हो सकता है।

समझ में नहीं आता कहाँ से आरम्भ करूँ, पर इतना अवश्य समझ रही हूँ कि एकदम सतर, सीधी सरल रेखा खींचना कितना कठिन होता है। न वह उच्च कुल में जनमी, न शिक्षा ही प्राप्त की, न आभिजात्य, न अहंकार, इस स्मृतिचित्र को आँकने में न कल्पना का ही सहारा ले सकती हूँ, न छंदोमयी भाषा का। बाईस वर्ष पूर्व मैंने उसकी नियुक्ति की तो मेरे पति ने घोर आपत्ति की थी, "इतने काम करने वाले तो हैं! फिर यह कई घरों में काम करती है, दस घरों का जूठन यहाँ फैलाएगी, हमारे यहाँ अपनी कोई प्राइवेसी नहीं रह जाएगी।"

"वह ऐसी नहीं लगती," मैंने दृढ़ स्वर में कहा। और उसी दिन से उसने हमारे गृह की सेविका का भार सँभाल लिया। वर्षों पश्चात्, जब मेरे पति मृत्युशय्या पर पड़े थे, तो उन्होंने कहा था, "तुमने इसे ठीक ही पहचाना था। यह हमेशा तुम्हारा सहारा बनेगी।" यद्यपि उस दिन पति का वह समर्थन मुझे मन-ही-मन विषण्ण कर गया था। उनके नैराश्यपूर्ण स्वर में अब मेरा सहारा न बने रहने का स्पष्ट संकेत था। उनकी मृत्यु के पश्चात् सचमुच ही उसने मेरी लड़खड़ाती गृहस्थी का सम्पूर्ण भार अपने दुर्बल कन्धों पर साध लिया। विछोह के प्रारम्भिक क्षणों में शायद विवेकशीलता एवं धैर्य के आयुध विधाता बड़ी हृदयहीनता से छीन लेता है। यह जानकर भी कि उस आघात को मुझे अकेले ही झेलना होगा, वह भी अडिग साहस से, मैं प्रतिपल हताश होकर धैर्यच्युत हुई जा रही थी। पति की ईमानदारी ने लक्ष्मी को बहुत पहले ही स्पष्ट कर दिया था, न कोई संचित धनराशि थी, न किसी जीवन बीमे के तिनके का सहारा। लिखने की चेष्टा करती तो लेखनी अड़ियल-अबाध्य अश्व बनी हिनहिनाकर दोनों पैरों पर खड़ी हो जाती। 'नहिं विद्या नहिं बाहुबल नहिं खर्चन को दाम' वाली स्थिति मुझे किंकर्तव्यविमूढ़ बना रही थी। इसी से मैंने उससे कहा, "रामरती, अब तुम्हें नहीं रख पाऊँगी। तुम कोई और घर देख लो।" तब तक उसका पूरा परिवार मुझ पर ही निर्भर था। अचानक उसके पति की नौकरी चली गई थी। तीन-तीन बेटियाँ थीं, उसे तो अपना पेट पालना ही होगा। "ल्यो, अउर सुनो!" वह सींकिया देह को सतरकर खड़ी हो गई थी, "कहती हैं अउर घर देख लो! हम का तोहका अइसन घड़ी में छोड़ देईं? हम का नमकहराम बिलार हैं दीदी, जो मालिक घरै दूध न मिली तो अन्तै चली जाईं?"

और वह नहीं गई, पर मेरे लाख कहने पर भी उसने तब तक वेतन नहीं लिया जब तब मुझे अपने पति का फंड, पेंशन-राशि नहीं मिली। मेरी मँझली पुत्री विदेश में थी, छोटी ससुराल में, छोटा पुत्र पढ़ रहा था। बड़ी पुत्री तीन महीने मेरे साथ रही, फिर उसे भी विदेश जाना पड़ा। जिस दिन वह गई, उसी रात को रामरती अपनी गुदड़ी-कंथरी सर पर धरे, रात को सहसा मेरे कमरे में हँसती खड़ी हो गई, "महतारी, ल्यो, हम आइ गईन।" फिर मजाल थी जो अर्धरात्रि के किसी दुर्वह क्षण में उससे छिपाकर मैं एक सिसकी तो कंठ में घुटक लूँ! मेरा निःशब्द रुदन भी उसके चौकन्ने कानों तक पहुँच जाता। वह तत्काल उठकर कठोर प्रहरी-सी मेरे सिरहाने खड़ी हो जाती—"आँखिन का फोर डरियो का? देखो दीदी, तोहार रोये-धोये से अब साहेब लौटिहैं का?"

मुझे खिलाने-पिलाने में वह फिर स्नेहशील जननी बनी। मेरे एक-एक गस्से का हिसाब रखती—रोटी क्यों छोड़ दी?...दूध क्यों नहीं पिया?

उस आघात के पश्चात, उसी ने मुझे काग़ज़-कलम थमा एक दिन जबरदस्ती लिखने बिठा दिया था, "थामो, लिख डारो तनी, जान्यो दीदी, जब हमार कड़ियल जवान मामा गवा रहा, हमार नानी रात-भर चकिया पीसत रही। हम उठिन की तनी नानी का हाथ बँटा दें, मार घुड़क दिहिन हमका, कहिन—'जा भाग जा, सो जा रतिया, हम का चकिया पीसत हैं? हम तो अपना दुख भुलाय रहिन!"

जीवन में पहली बार, अपने उस लेख को बिना दूसरी बार देखे मैंने ज्यों-का-त्यों 'नवनीत' में भेज दिया था—'बाँधीश ने आर मायार डोरे', और जब सैकड़ों प्रशंसकों-पाठकों ने मुझे उस लेख के लिए बधाई के पत्र लिखे तो लगा, कैसी सवा लाख की सीख दी थी उस अनपढ़ नारी ने! लेखनी की चकिया पीस न केवल मेरे दुख की गठरी हलकी हुई मुझ जैसे अनेक विधुर आहत हृदयों का भी दुख हलका हुआ था।

कभी-कभी उसकी दार्शनिकता देख अवाक् रह जाती। एक दिन मैंने कहा, "रामरती, इस जीवन में तो मैंने किसी का बुरा नहीं किया, फिर भगवान ने मुझे दंड क्यों दिया?"

वह एक क्षण को निर्वाक् मूर्तिवत् बैठी रही, फिर बोली, "हम का इसी जिनगी का किया भोगत हैं दीदी? अरे पिछले जनम का हिसाब भी तो चुकता किए का परीं! अब तुम जो दिन-रात तम्बाकू खात हो, तोहार बिटिया-बिटवा कहत हैं—रामरती, दीदी का तम्बाकू छुड़ाय दे, डिबिया छिपा दिया कर, कैंसर होत है—हम का छिपा सकिन हैं आज तलक? आपहु हमें दिन-रात डाँटत हैं कि बीड़ी मत पी,

Scanned by CamScanner

कलेजा मत फूँक, सो हम का छोड़ सकिन हैं? अरे, ई सब उई जनम केर अमल हैं, सब हमार करनी का अमल। रोग, जर-जमीन, केस-मुकद्दमा, फाँसी, जेल, अमल सब सूद हैं सूद—उह जनम में लिए रहे, इहु जनम में चुकाय रहिन हैं। बड़ा जालिम सूदखोर महाजन है भगवान, जान्यो दीदी! जब तक एक-एक धेला न वसूली, छोड़ि है नाँही।"

मैं आश्चर्यचकित हो उसकी बातें सुन-सोच रही थी—न इसने कभी कोई धर्मग्रंथ पढ़े, न मनीषियों की पंक्तियाँ ही सुनीं, किन्तु फिर भी उनके मनन-चिन्तन से उसकी सरल विचारधारा का यह कैसा अद्भुत साम्य था!

रोगं शोकं परितापं
बंधनं व्यसनानि च
आत्मापराध वृक्षस्य
फलानेतानि देहिनाम्।

रोग, शोक, परिताप, बन्धन, व्यसन सब हमारे ही अपराध-वृक्ष के फल हैं—चाहे इस जन्म के हों या उस जन्म के।

घाघ, भड्डरी सदा उसके जिह्वाग्र पर रहते। मैं कहीं जाने को होती और घटाटोप मेघांधकार देख छतरी लेने लगती तो वह कहती—का करिहो छतरी, जाओ, बेहिचक जाओ, बरसिहै नाँही, कारी बदरी जिया डरायै...भूरी बदरी जल बरसायै।"

उसके मौसम विभाग की सूचना कभी गलत नहीं निकलती। मैं नित्य करेला खाती थी, पर मजाल है कुँआर में यह धृष्ट फरमाइश कर सकूँ—"नाहीं, हम न देव। जानती हो—'कुँआर करेला, कातिक दही... मरिहै ना तो परिहैं सही।"

कुँआर में करेला खा लिया तो मरूँ भले ही नहीं, बीमार अवश्य पड़ जाऊँगी!

आज मुझे असंख्य सीखों के कवच से सेंतनेवाला कोई नहीं है। मैं चिलमिलाती धूम में लौटती तो वह मेरे प्रत्यावर्तन का समय सूँघ अपने दक्ष हाथों से मँजा, दर्पण-सा शीतल जल पूरित काँसे का लोटा लिए खड़ी रहती—"ल्योउ, पहिलै ठंडाय लो।" प्राय: ही गरमी में लखनऊ की बिजली किसी दगाबाज मित्र-सी चली जाती। किन्तु सिर के ऊपर फरफराता बिजली का पंखा अचल होने पर आँखें खुलतीं तो देखती, विजना डुलाती सींक-सी दुबली कलाइयाँ निरन्तर सचल हैं। मेरे लाख मना करने पर भी वह मेरे सिरहाने बैठी तब तक पंखा झलती रहती जब तक बिजली न आ जाये!

जब मैं दिल्ली से पद्मश्री लेकर लौटी तो वह द्वार पर बेले-गुलाब का हार लिए स्वागत के लिए खड़ी थी। अपनी संचित सीमित धनराशि से उसने हार ही नहीं

मँगवाया था, लड्डू-भरी प्लेट से एक लड्डू मेरे मुँह में धरा तो मेरी आँखें भर आई थीं। जहाँ मेरी साहित्यिक बिरादरी से इक्के-दुक्के ही ने मुझे बधाई दी थी, वहीं उस अनपढ़, सरला सेविका का उल्लास सम्भाले नहीं सम्भल रहा था। फिर कुछ ही दिनों बाद अचानक मेरे दाहिने हाथ में असह्य दर्द उपजा। कलम भी नहीं पकड़ पा रही थी। इधर 'धर्मयुग' से दो तार आ चुके थे कि मैं दीवाली अंक के लिए अविलम्ब ताता कहानी भेजूँ। "रामरती, लगता है अब कभी नहीं लिख पाऊँगी।" मैंने कहा तो वह तुनककर बोली, "न लिखें तोहार दुश्मन! अरे, हम जानित हैं का हुआ, नजरिया गया है हाथ, ई जौन पदमसिरी पाये हो, सब जल-भुन गए हैं, अतवार को हम नजर उतारीं।"

उस इतवार को जब मेरे कमरे में कुछ शालीन अतिथि बैठे थे, 'ए दीदी, सुनो तनी," कह उसने मुझे इशारे से बुलाया। देखती क्या हूँ कि एक साथ में लोहे के कलछुल में दहकते अंगारे लिए, दूसरी मुट्ठी में मिर्च, चून, भूसी बाँधे रामरती खड़ी है, "बोल्यो नाँही, हम नजर उतारब।" उसने सात बार मेरे घायल हाथ की परिक्रमा कर मुट्ठी में बँधी मिर्चें अंगारों में झोंक दीं। भयानक खखार उठी कि मेरे अतिथि खाँसते-खाँसते बेदम हो गए, "लगता है, आग में मिर्च चली गई!" एक ने कहा।

मैं किस मुँह से कहती कि मेरे नजरिया गए हाथ की नजर का ही उन्हें यह मूल्य चुकाना पड़ रहा है। आज जब एक बार फिर वही दाहिना हाथ अस्थिभंग के कारण अचल पड़ा है तो उसकी नजर उतारनेवाली बहुत दूर चली गई है।

उसे इधर-उधर घूमने का बेहद शौक था। दस वर्ष की थी तो विवाह हो गया। सौतेली सास थी। पति को शराब ने बरबाद कर दिया था। उधर कच्ची वयस में ही धारावाहिक प्रसवों ने उसे प्रौढ़ बना दिया था। कई घरों में काम किया, तसलों में गारा-चूना ढोया, छतें पीटीं, घास बेची, किन्तु भरी जवानी में भी कभी किसी प्रलोभन की अबरकी चट्टान पर पैर नहीं फिसलने दिया। दिन-रात ढोल-दमामे-सी पीटी जाती, ननिहाल में सब-कुछ था, स्वयं उसी के शब्दों में, "जब नानी सुनिन कि 'फलाने' (वह कभी अपने पति का नाम नहीं लेती थी) हमार गत बनाइ डारिन तो या नोटन की मोटी गड्डी थमा कर कहिन, 'रतिया, छोड़ दे इस मनई को, ननिहाल चली आ, हम तोहार अन्तै घर बसाय देब!' हम कहिन—'खबरदार, जो कबहु इहु बात दोहरायो। हमार मनसेधू हैं, हमारा अँगूठा पकड़िन हैं, हम का अइसन छोड़ देईं? छोड़ें तो ऊ छोड़ें, हम काहे छोड़ीं?"

इस युग में कितने अँगूठे ऐसे स्वामिभक्त रह गए हैं!

Scanned by CamScanner

मैं देखती, उसका पति कभी-कभी पूरी तनख्वाह ही मधुशाला में लुटा, लड़खड़ाते कदमों से घर लौटता। कभी खबर आती, वह बेहोश किसी नाले में पड़ा है। वह फौरन भागती, उसे रिक्शा में लादकर घर लाती, सिर पर ठंडा पानी डालती, वमन पोंछती। और थाली परसकर चुपचाप उसके सामने रख देती। वह मदालस जिह्वा के प्रहार से धरती-सी सहिष्णु पत्नी को ही धराशायी नहीं करता, एक लात मार थाली भी दूर पटक देता, और वह रोती-रोती मेरे पास लौट आती, "फलाने आज फिर नशे में 'डौन' हैं दीदी, पूरी तनख्वाह कोई निकाल लिहिस है जेब से—अइसन-अइसन महतारी-बहिनियाँ न्यौत रहें कि बस!"

"और तू रोज उसका चरणामृत पीती है, जा फिर पी आ।" मैं उसे कई बार सोये पति के पैर धोकर आचमन करते देख चुकी थी। किन्तु उस अटूट पतिभक्ति का उसे पुरस्कार भी मिला। शायद उसी की असंख्य मनौतियों से पति की शराब लत हमेशा के लिए छूट गई। जिस पत्नी के यौवन अंकुर को उसने अपने रूखे आतप से असमय ही सुखा दिया था, उसे वह अब उसकी प्रौढ़ावस्था में यत्न से सींचने लगा था। वह भी अपना क़र्ज़ ब्याज सहित वसूलने लगी थी। मेरा काम निबटाकर वह घर जाती तो बड़े दबंग स्वर में बीसियों आदेश देने लगती, "फलाने, हमार बिस्तर लगाय देव, अउर तनी ठंडा पानी पिलाओ तो हम लेटीं!" फिर एक दिन अचानक वह सब काम स्वयं करने लगी। मैंने पूछा, "क्यों री, अब तू हुकुम नहीं चलाती अपने फलाने पर?"

"का बताई दीदी, एक दिन अम्माजी (मेरी माँ) बरामदे में खड़ी देख रही थीं। फलाने हमार पेटीकोट धोकर फैलाय रहे थे, बस्स, अम्मा जी उँही से गरजीं, 'काय री रामरती? खसम निठल्ला कूटे धान...बीबी नरंगी चाबै पान! शरम नहीं आती तुझे?" उई दिन से हम कान पकड़िन दीदी—इनसे काम न कराब!" फिर भी वह रौब जमा ही देती। कभी-कभी वह भुनभुनाकर कहता, "हम जानत हैं रतिया, तू खूँटे के बल पर नाचत है!" स्पष्ट चोट मेरे ही खूँटे पर है, मैं यह समझ जाती।

"अऊर का, तू हमका अब छूकर तो देख, दीदी चट्ट से अखबार में छपवा देहीं।" पर पति-पत्नी दोनों ही मुझे भवानी-सा पूजते थे। दिन-रात रामरती मेरी छाया बनी रहती, फिर भी उसके पति ने कभी मुझे उलाहना नहीं दिया। मैंने बाली की हृदयहीनता से उसकी पत्नी को छीन लिया था, फिर भी न कोई शिकवा, न गिला। मैं ही उससे कहती, "तू दिन-रात यहीं रहती है, बेचारा थका-माँदा दफ़्तर से आया है। जा जरा उसके पास बैठकर हँस-बोल आ!"

"अब का हँसी दीदी?" वह एक दीर्घ श्वास लेकर कहती, "जब हँसने के दिन थे तब तो हँसिन नाँही। हम जाब तो मार भुन्न-भुन्न करें लगिहैं।" सचमुच

ही दोनों बिना जूझे एक पल भी नहीं रह सकते थे—कभी वह ताना मारता, कभी यह। वह सेर था तो रामरती सवा सेर। पर एक-दूसरे के बिना रह भी नहीं सकते थे।

मैंने एक दिन कहा, "मुझे और नहीं तुझे ठौर नहीं वाला हिसाब है तुम्हारा। पर तू भी तो कम नहीं है। छौंक तो तू भी खूब लगाती है। चुप क्यों नहीं रहती?"

"बिना छौंक के का दाल नीक लगती है दीदी? मनई से तनी खट्ट-पट्ट रहे तब ही जिनगी में खन्नक रहता है।"

कितना सत्य कथन था उसका! उसकी दृष्टि में 'तनी खट्ट-पट्ट' वैवाहिक जीवन के अजीर्ण अपच का रामबाण पाचक था। "ई का कि दिन-रात मनसेधू के गले में गलबँहिया डारै पड़े रहो। हम इत्ती मार खाइन हैं, तब ही तो अब हमका पान के पत्ते-सा फेरत हैं फलाने।"

अपनी दुबली कलाई में उसने वर्षों पूर्व एक दर्शनीय गोदा गुदाया था—गमले में गुलाब का पौधा, राधाकृष्ण की युगल जोड़ी और ऊपर लिखा पति का नाम फिक्कूलाल! समय के साथ-साथ बैंजनी स्याही प्रगाढ़ होती जा रही थी और वैसे ही प्रगाढ़ होते जा रहे दोनों के प्रेम को देख मैं कभी-कभी शंकित हो उठती। क्या दोनों ही मन-ही-मन जान गए हैं कि अब उस सुदीर्घ साहचर्य का अन्त समीप है?

एक दिन उसने मुझसे पूछा, "ऐ दीदी, हवाई जहाज में बैठे पै कइसन लगत है?"

"तू कभी नागर दोले में बैठी है? जब जहाज उतरता है तो ठीक वैसा ही लगता है।"

"अरे बईठन काहे नाँही, उँही तो हम पहली बार फलाने को देखे रहिन।" और फिर उसने मुझे अपनी कोर्टशिप की रोचक कहानी सुनाई थी। अपनी बात प्रभावशाली ढंग से कहने की जो विलक्षण क्षमता विधाता ने उसे दी थी, वह इतने वर्षों तक कलम घिसने पर भी मैं शायद आज तक प्राप्त नहीं कर सकी हूँ।

"गुढ़ियन का मेला लगा रहा। हम रहे होंगे यही कोई दस बरस केर। मेला गए तो जिदियाय गए। अम्मा, चरखी पर बैठब!"

फिर उसी के शब्दों में उसकी सज्जा का वर्णन सुनिए, "हाथ-भर चूड़ियाँ पहनाइन थीं अम्मा, फूलदार कन्नी की नई साड़ी पहने रहे, माथे पर टिकुली, आँखिन माँ काजर, मिस्सी, पायल, लच्छा। खूब पान गुलगुलाये रहे, हमका का पता कि ऊपर के कोठे में फलाने बइठे हैं—हम का कौनौ देखै रहे इनका?

"झूला चला और बस्स, फलाने टपकाई दिहिन खुसबूदार रूमाल! हमार तन-बदन में आग लग गई। हम खूब गरियाव लाग, 'ऐ दाढ़ीजार, मुसकिया के

Scanned by CamScanner

रूमाल काहे डालिस हमारी गोद में? तेरी खटिया उठै! न जाने कहाँ से आय गवा गुंडवा!' हमार अम्मा हमें आँखी दिखाइन, 'अरी चुप कर, इन्हीं से तो तोहार बात लगी है,' फिर तीसरे दिन हम अकेली कुएँ से पानी खींचत रहीं तो देखिन फिर वही रेशमी रूमाल जेब में लटकाय खड़े हैं। कहिन-ए लड़की पानी पिला! हम कहिन-तोहार बाप केर नौकर हैं का? बोले-अउर का! एक-न-एक दिन हमार नौकरी करबई परी। अउर फिर अइसन नौकरी करवाइन बाप-बिटवा कि का कही!"

फिल्म देखने का उसे बेहद शौक था। उसके प्रिय अभिनेता थे धर्मेंद्र और अमिताभ बच्चन, जिनके लिए उसके अपने नाम थे—धरमेंदुआ अउर अमितभुआ। मैं कुछ वर्ष पूर्व बम्बई आने लगी तो वह बीमार अमिताभ की रोगमुक्ति के लिए इधर-उधर मन्नतें माँग डोरे बाँधती फिर रही थी। कभी खम्मन पीर कभी सैयद बाबा की मजार! मुझसे बड़ी उत्कंठा से उसने पूछा, "काहे दीदी, अमितभुवा से मिलिहो?"

"क्यों?" मैंने पूछा।

"मेरी दीदी, कहियो बचुआ, रामरती बहुत याद करत रही।"

मुझे उसके सरल सन्देश पर तब हँसी आ गई थी। जिसे उसने कभी सशरीर देखा भी नहीं था, उसके लिए वह महत्वपूर्ण सन्देश! पर मैंने भी उसका सन्देश अमिताभ तक पहुँचा ही दिया था। दूरदर्शन चालू होता तो वह कृषि दर्शन से लेकर अन्त तक प्रत्येक कार्यक्रम देखती। रामायण में तो उसके प्राण अटके रहते। आठ ही बजे से हाथ में फूल लेकर बैठ जाती और आरम्भ होते ही ज़मीन पर दंडवत् की मुद्रा में लेट फूल चढ़ाकर जोर से कहती, "सियावर रामचन्द की जै!" राम की मुस्कान पर वह मुग्ध थी। कहती, "जान्यो दीदी, तीन ही जनी गजब की मुसकी छाँटत है, रामायण केर राम, राजीव भैया और हमार राधिका बिटिया (मेरी दौहित्री)!

राजीव गांधी लखनऊ आते तो हो न हो, उन्हें हमारे ही गृह के पास की सड़क से गुजरना पड़ता, हवाई अड्डे का वही एकमात्र मार्ग था। रामरती उस दिन मुझे सुबह ही नोटिस दे जाती, "आज हम राजीव भैया को देखे जाब, काम ना होई हमसे।" और फिर, "दीदी, कउन-सी साड़ी पहनें?" वह ऐसे पूछती जैसे राजीव भैया उसी से मिलने आ रहे हों। रवीन्द्रनाथ की 'राजार दुलाल' कविता क्षण-भर को जैसे साकार हो उठती :

ओगो माँ
राजार दुलाल जाव आजी
मोर घरेर समुख पथे—

आजिए प्रभाते गृहकाज लये
रहिबो बलो कीमते?
बले दे आमाय की करीबो साज
की छांदे कबरी बेंधेलब आज
परीबो अंगे कैमन भंगे
कोन बरने बास?

(अरी माँ, राजा का दुलाल आज मेरे घर के सामने वाले पथ से गुजरेगा, आज सुबह, तुम्हीं बताओ मैं घर का काम-काज कैसे कर सकती हूँ? बता दे न माँ, कैसा शृंगार करूँ, कैसे चोटी गूँथूँ, कौन-सी, किस रंग की साड़ी पहनूँ?)

मा गो की होलो तोमार?
अवाक नयने मुखपाने कैन चास
आमी दांड़ाब जेथाय
वातायन कोने
से चाबेना सेथा
ताहा जानी मने
फेलिबे निमेष दैखा हबे शेष
जाबे से सूदूर पूरे
शुधू सगरे बांशी कोन माठ हते
बाजिबे-व्याकुल सुरे
तबू राजार दुलाल जाबे आज
मोर घरेर समुख पथे
शुधु शे निमेष लागी
ना करिया बेश रहिबो
बलो कीमते!

(अरी माँ, क्या हो गया तुझे? ऐसे क्यों देख रही है? मैं उस कोने में खड़ी रहूँगी, जहाँ वह देखेगा भी नहीं, वह उधर ताकेगा भी नहीं, यह मैं जानती हूँ। एक पल में वह झाँकी समाप्त हो जाएगी। वह सुदूर नगर में चला जाएगा। केवल दूर कहीं व्याकुल स्वर में वंशी बजती रहेगी। तब भी राजा का दुलारा कुँअर आज जब मेरे घर के सामने के रास्ते से जाएगा तो मैं उसी क्षण के लिए बिना शृंगार किए कैसे रह सकती हूँ, तुम्हीं बताओ!)

Scanned by CamScanner

हाथ में गुलाब का फूल लिए बेचारी रामरती घंटों राजा के दुलाल की प्रतीक्षा में खड़ी रहती और दर्शन कर तृप्त होकर लौटती।

मेरे साथ वह बहुत घूमी थी। बम्बई, बनारस, कानपुर, रीवाँ। जो विश्वविद्यालय मुझे बुलाता, वह पहले ही अपनी गठरी बाँध तैयार हो जाती, मैं यदि ए.सी. में जाती तो वह मेरे डिब्बे में बैठती, "देखो, रामरती, तुम वहाँ बीड़ी नहीं पियोगी—समझी?" मैं कहती। यही उसके लिए बहुत बड़ी सजा थी। फिर ट्रेन चलते ही पुराना अमल उसे बेचैन कर देता।

वह मेरे कानों में फुसफुसाकर कहती, "ए महतारी, मार जमुहाय लगे हैं, गुसलखाने में सुट्टा खींच आईं?" "जा मर!" मैं झुँझलाकर कहती तो वह तीर-सी भागती।

न जाने कितनी बार मैंने उसकी बीड़ी के बंडल छिपाए हैं। न जाने कितनी बार डाँटा-फटकारा है। पर उसने कभी पलटकर जवाब नहीं दिया। उसके तीव्र विरोध के बावजूद मैंने उसकी दो पुत्रियों को पढ़ने भेज दिया। उसकी बिरादरी में उसकी पुत्री ही सम्भवत: प्रथम ग्रेजुएट थी। इसका उसे गर्व था, किन्तु चिन्ता भी थी, "अब इत्ता ही पढ़ा-लिखा लड़का भी तो चाही। कहाँ पाई आपन बिरादरी में!"

मैंने ही उसकी उस पुत्री को 7 वर्ष की वयस से पाला था। उसने कहा था, "अब तुम्हीं इसकी अम्मा हो, कन्यादान करे का परी।"

ईश्वर ने उस कर्तव्य को निभाने की शक्ति दी। अपने जीवन का वह चौथा कन्यादान भी सम्पन्न किया। विवाह मेरे ही घर से हुआ। ऐसे पुष्ट बारात स्वयं मेरी तीन पुत्रियों के विवाह में भी नहीं जुटी। हलवाई भी बैठे, शामियाना भी लगा, बिजली के लट्टू भी जगमगाये। यहाँ तक कि बारात में सजे सँवरे मत्त गयंद भी पधारे, जिनकी आरती उतारने में बेचारी रामरती थरथर काँपने लगी। उसने शायद कभी सपने में भी सोचा नहीं था कि कभी उसके द्वार पर हाथी खड़ा होगा! पुत्री विदा हुई तो वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी। कृतज्ञता वे आँसू एकदम अन्तस्तल से निकले विशुद्ध आँसू थे। "आज हम गंगा नहाय लिहिन, महतारी!"

पर पुत्री के विवाह के बाद उसका स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा था। मैंने कहा, "रामरती, यह क्या हो गया है तुझे? रोज बीमार—कभी तू और कभी मैं!"

उसका म्लान चेहरा एक बार फिर पुरानी चुहल की रेखाओं से उद्भासित हो उठा, "जान्यो दीदी, अब हम दूनों केर ओवर-हॉलिंग कराए का है, टूब-टायर दूनों बदलवैया हैं।"

पर अचानक वह अकेली ही मुझसे मिले बिना ट्यूब-टायर बदलवाने चली जाएगी, यह मैंने नहीं सोचा था। यद्यपि मुझे उसके चिर प्रस्थान की शंका होने लगी थी। लम्बे प्रवास के बाद लौटी तो वह खाट पकड़ चुकी थी—कंकाल-सी देह, जैसे कोई दस-बारह साल की बच्ची पड़ी हो। फिर भी चेहरे पर वही स्निग्ध हँसी, "दीदी आई गईन। अब हमका कछु ना होई।"

उसका यह विचित्र विश्वास था कि मेरे रहने पर उसे कुछ नहीं हो सकता। जाएगी तो मेरे न रहने पर। दो बार मैं उसे सचमुच ही मौत के मुँह से खींच लाई थी। एक बार जब वह रक्त-वमन कर अचेत हो गई तो मैं तत्काल एम्बुलैंस में अस्पताल ले गई थी। दूसरी बार जब सम्भवत: उसे पहला दिल का दौरा पड़ा था। "ऐ दीदी, बचाय लो हमें, बड़ा जीव धबड़ा रहा है।" उस दिन भी उसे ईश्वर ने छोड़ ही दिया था। सन्ध्या होते ही वह फिर चैतन्य हो गई, "हम जानत हैं महतारी जमऊ ससुर आपसे डरात हैं..."

उसकी दृढ़ धारणा थी कि मृत्यु की उत्क्रान्ति या शक्ति मेरी मुट्ठी में बन्द रहती है—जब चाहूँ यमराज को समझा-बुझाकर वापस भेज सकती हूँ। इसी से जब इस बार लखनऊ छोड़ा तो वह रोने लगी, "ऐ मोर महतारी, हमका छोड़ के न जाओ।"

मैं उसकी निरन्तर गिरती अवस्था को देखकर रुक नहीं सकती थी। जिन-जिन लक्षणों के विषय में पढ़ा था, वे स्पष्ट उभर रहे थे। बाईं आँख से निरन्तर पानी गिर रहा था, कानों की लोरियाँ पलट गई थीं, नाक टेढ़ी लगने लगी थी, सिर के बाल साही के काँटे-से खड़े हो गए थे। मैं जान गई कि लौटकर इस स्वामिभक्त सेविका को कभी नहीं देख पाऊँगी। मैं नित्य उसके पास बैठती, उसके सींक-से पैर सहलाती तो वह अर्धचैतन्यावस्था में भी चट से ऊपर खींच लेती। "अब नरक में काहे ढकेलत हो दीदी, हमार गोड़ जिन छुयो..."

मैं जिस दिन उससे अन्तिम विदा लेकर लौटी तो उसने बड़े कष्ट से अपने दोनों हाथ माथे से लगा लिए। एक बार मुड़ी तो देखा, वह करुण, विवश, असहाय अश्रुपूरित दृष्टि से मुझे एकटक देख रही है।

जिसने न जाने कितनों की छोटी-मोटी व्याधियाँ दूर कीं, वह पल-पल मृत्यु से पराजित हो रही थी। उसके जड़ी-बूटियों के ज्ञान की ख्याति दूर-दूर तक थी। आए दिन भीड़ जुटी रहती—कभी बच्चे के दाँत बिठाने, कभी उखड़ी हँसुली, कभी खिसकी नाभि। और कमर की हूक दूर करने में तो उसे विधाता का वरदान प्राप्त था। "हम उलटे जनमें हैं।" वह बड़े गर्व से कहती, "एक लात धर मरीज का दौड़ा देईं तो कइसनऊ हूक हो, साफ।" वह उपचार वह अपनी भाषा में केवल 'अतवार-मंगल' को ही करती। वह दृश्य भी देखने लायक होता। जब कमर थामे,

Scanned by CamScanner

कांखते-कराहते मरीज आते। वह ठाठ से कमर पर लाल जमाकर कहती, "जाओ तेजी से भागो!" रोता रोगी हँसता हुआ ही जाता। एक दिन इतवार को बड़ी देर से आई। मरीजों की भीड़ उस दिन कुछ अधिक थी। मैंने फटकारा, "यह क्या ढोंग है, या तो डॉक्टरी ही कर ले या मेरी नौकरी!"

"का करी दीदी, आज कमर थामे एक अकड़बाज थानेदरुआ आबा रहा। पूछत है, 'सुना तुम कमर की हूक ठीक करती हो। हमारी हूक ठीक कर पाओगी?' हम कहिन, 'ल्यो, बड़े-बड़े, डूबी गए, गदहा पूछै कित्ता पानी! कइसन-कइसन ब्रिगेडियरन की, पुलिस कप्तानन की हूक ठीक किए हैं।' हम कहिन, चलो खड़े हो जाओ और अइसन लात धरिन महतारी, कि ओकर सब थानेदारी भुलाये दिहिन!"

अब इस सरस कैफियत के बाद किस मुँह से डाँट सकती थी उसे? किन्तु जब एक बार मेरी कमर में हूक पड़ी तो लाख चिरौरी करने पर भी उसने मेरी कमर पर प्रहार नहीं किया, कान पकड़कर जीभ काटकर बोली, "राम-राम! हमका मत कहो दीदी। हम मर जाई पर ई काम नाँहि कर सकत!"

खूनी पेचिश, कान-दाढ़ का दर्द, सब टोटके उसके आँचल की गाँठ में बँधे रहते। मेरी सन्तान उसे अपनी सन्तान से प्रिय थी। मेरी बेटियों को बड़ी होते देखा था। उनके विवाह देखे, फिर उनके बच्चे देखे। बन-ठन छोचक की परात सर पर धरे उनकी ससुराल गई। नेग-निछावर लिया। मेरी सबसे छोटी लड़की के दो जुड़वाँ बेटों में तो उसके प्राण बसे थे। फैजाबाद जाकर उनके साथ महीना-भर रह आई थी। "अरे हम दूनों को बेबी गाड़ी में घुमाबे ले जाएँ तो भीड़ लग जाये, लोग पूछें, 'अरि केकर बिटवा हैं री' हम कहती, 'राजा रामचन्द्र केर जुड़िया हैं लव-कुस!"

अंग्रेज़ी शब्दों का उसका अपना मौलिक कोश था। वाइस चांसलर को 'वाइस टांटलर', 'ब्लिट्ज' को 'बिलडप्रेशर', फैंटा को 'एलिफैंटा' और गोर्बाचोव को 'करवाचौथ'! एक बार टेलीफोन पर कोई सिरफिरा मुझे बेहद परेशान करने लगा। वह भी रात-आधी रात को। कभी रामरती की लड़कियों के नाम लेता, कभी मुझसे कहता, "लिखना बन्द करो, हम उग्रवादी हैं, तुम्हें खत्म कर देंगे।"

एक दिन रामरती बोली, "महतारी, अब फून आये तो तुम मत उठाना। हम उग्रवादी की खटिया खड़ी करब।"

आधी रात को फोन बजा, उसी ने उठाया :

"हैलू, कौन है रे?"

उधर उद्धत स्वर ने पूछा, "शिवानी जी हैं?"

"हाँ हैं।"

"क्या कर रही हैं?"

"तोहार अरथी सजाय रही हैं।"

उसने फिर कुछ कहा तो वह जोर से गरजी, "यू ब्लाडी बास्टर्ड!" और फोन रख मेरी ओर बड़े गर्व से मुस्कराकर बोली, "अपने ससुर से सीखी रहिन ये गाली। अंग्रेजन के खानसामा रहे हमार ससुर। अंग्रेज़ी समझत होई तो अब चुप्पै रहब सरऊ!" उसके ससुर से सीखी वह गाली बड़ी अचूक निकली। फिर उस सिरफिरे ने कभी परेशान नहीं किया।

उसकी मासूम सरलता की एक मार्मिक घटना मैं कभी नहीं भूलती। मैं अपने पति की क्रिया कर हरिद्वार से लौटी तो अपना ही घर मुझे बियाबान लग रहा था। नींद नहीं आ रही थी। मैं बरामदे में कुर्सी डालकर बैठी थी। सहसा पालतू बिल्ली-सी वह मेरे घुटनों से कपोल सटाकर बैठ गई, "जान्यो दीदी, आप नहीं रहीं तो साहेब रोज आवत रहें..."

मैं चौंकी, "क्या बक रही है, रामरती?"

"यकीन मानो दीदी, रोज संझा को आएँ और आपके कमरे के दरवज्जे पर उचककर बैठ जाएँ।"

फिर बताने लगी कि नित्य सन्ध्या को एक चिड्डा लगातार दस दिनों तक चुपचाप दरवाजे पर बैठ जाता और टुकुर-टुकुर देखता रहता। न संग में गौरैया न कोई चिड्डा। "रात होती तो हम दिया जलाकर देहरी पर रख आती, फिर हाथ जोड़कर कहती, 'साहेब, अब बड़ी अबेर हुई गई, अब लौटा जाई।' बस, फर्र से चिड्डा उड़ जाता।"

मैं उस दृश्य की कल्पना कर सकती थी। द्वार पर बैठा चिड्डा और नन्हा-सा घूँघट निकाले, दोनों हाथ जोड़े खड़ी रामरती—साहेब अब बड़ी अबेर हो गई है, लौटा जाई।

न मैं उस दिन हँस पाई थी, न फिर कभी। पूछा उससे एक दिन अवश्य था, "क्यों री, फिर तेरे साहेब नहीं आए?"

"अब काहे आएँ महतारी, पीपल पानी पाए गए हैं।"

पुत्री के विवाह के पश्चात् उसके सामने कर्तव्य निर्वाह के वे कठिन क्षण एक-एक कर आने लगे जो हर माँ के जीवन में आते हैं। आज खिचड़ी भेजे का है, करवा भेजै परी, दामाद का जोड़ा, आज गुढ़ियाँ है। वह नित्य नवीन फरमाइश लेकर मुझे घेर लेती। मैं कभी-कभी बुरी तरह झुँझला उठती— "खा लिया है तूने, मुझे? मेरे पास क्या रुपयों की खान धरी है! और कहीं क्यों नहीं जाती?"

Scanned by CamScanner

वह निःशब्द सिर झुकाए खड़ी रहती फिर विवश स्वर में कहती, "अउर कहाँ जाएँ महतारी?" आज गुरुदेव की वे पंक्तियाँ मुझे पश्चाताप से विगलित कर देती हैं :

कैनो रे तोर दू हाथ पाता
दान तो चाई ना, चाई जे दाता।

(अरे मेरे मन, तूने माँगने को दो हाथ क्यों फैलाये हैं, मुझे दान नहीं चाहिए दाता चाहिए)

शायद मुझमें वह दाता ही पाना चाहती थी, उसने कभी मुझसे दो वचन लिए थे—एक उसकी पुत्री का कन्यादान करूँ, दूसरा हम जब घाट जाएँ दीदी, तो आप हीं के पहुँचायें परी। "फलाने के पास तो वा दिन भी पैसा रहे ना रहे! अउर बिटिया-दामाद के करज का कफ़न हम ना ओढ़ब।"

वह मेरी सच्ची सेविका थी। इसी से शायद मैं अपने दोनों वचन निभा पाई। उसकी देह शायद ठंडी भी नहीं पड़ी होगी कि मुझे बहन का फोन मिल गया। तत्काल मैं उसके महाप्रस्थान के आरक्षण का प्रबन्ध कर पाई थी। इस ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को पति का श्राद्ध हुआ तो उसका अभाव खटका। तड़के ही नहा-धोकर, मेरे गृह की देहरी गोबर से लीप, वह गोग्रास खिलाने आ खड़ी होती। एक बार मेरा पुत्र अपने पिता का श्राद्ध कर रहा था तो मैंने देखा, आँखें पोंछती रामरती उसे एकटक देख रही है। बाद में मैंने पूछा, "रो क्यों रही थी री? क्या फिर साहेब को देखा?"

"नाँही दीदी, भैया कइसन पिरेम से नंगे बदन सराध करत रहें। हमार बिटवा जिया होता तो इत्ता ही बड़ा होता, अब हम मरि जाईं तो कौन देई हमें पानी?"

"क्यों, तेरी बेटियाँ हैं, बेटियों के बेटे हैं..."

"दीदी की बातें... आपन बिटवा आपन होत। बिटियन केर बिटवा का हमार होई? सुन्यो नहीं—धी का पूत, गधी का मूत!"

मुझे हँसी आ गई थी।

पर आज नहीं हँस पा रही हूँ, जब मेरा पुत्र श्राद्ध सम्पन्न कर एक-एक कर पितामह-मातामह, पितामही-मातामही सबका स्मरण कर तिलांजलि दे रहा था और पंडित जी कह रहे थे, "आपके जो भी प्रिय दिवंगत बंधु-बांधव हों उन्हें भी स्मरण कर जल दीजिए।" जी में आ रहा था कि कहूँ, एक तिलांजलि उसे भी दे दे जो इष्ट मित्र न होकर भी मुझे पुत्री-सी प्रिय थी। पर कैसे कह सकती थी,

हिन्दू धर्म का व्याकरण बड़ा जटिल है। उसमें सामान्य-सी फेरबदल सम्भव नहीं है। मैं स्वयं नारी हूँ, किसी का श्राद्ध सम्पन्न करने के अधिकार से वंचिता। क्या दक्षिणाभिमुख हो, यज्ञोपवीत दाहिने कन्धे पर रख प्राचीनावीती करना सम्भव है मेरे लिए? तिल-जल भृंगराज एवं तुलसी दल रख उसे वह पूरक पिंड दे सकती हूँ जो उसे प्रेत योनि से मुक्त करे? पर इतना तो कह ही सकती हूँ, 'अनादिनिधनो देव शंख चक्र गदाधरः, अक्षयः पुण्डरीकाक्षो प्रेत मोक्षप्रदो भव।'

Scanned by CamScanner

हरिवंशराय बच्चन

हरिवंशराय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर, 1907 को उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के एक छोटे से गाँव बाबूपट्टी में एक कायस्थ परिवार में हुआ था।

श्री हरिवंशराय बच्चन छायावादोत्तर काल के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनकी कविता के तीन मोड़ स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश', इनकी आरम्भिक रचनाएँ हैं। इन तीनों संग्रहों में वे हाला, प्याला, सुराही, मदिरालय आदि के माध्यम से मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता की बड़ी सुन्दर व्याख्या करते हैं। धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि के संकुचित दायरे से उठकर वे मनुष्य की पहचान सिद्ध करना चाहते हैं।

पहली पत्नी की मृत्यु के बाद ये बेहद निराश हो गए थे। इस एकान्त मन की अभिव्यक्ति 'निशा निमंत्रण', 'एकान्त संगीत' और 'आकुल अन्तर' में व्यक्त हुई। यह इनके काव्य का दूसरा मोड़ था।

'सतरंगिनी', 'मिलन यामिनी' और 'प्रणय पत्रिका' ये तीन संग्रह बच्चन काव्य के तीसरे मोड़ को सूचित करते हैं। इसी समय उनका दूसरा विवाह तेजी बच्चन के साथ हुआ था। 'बुद्ध या नाचघर', 'आरती और अंगारे' इनकी परवर्ती काल की रचनाएँ हैं।

जीवन के उत्तरार्द्ध में आपने अपनी आत्मकथा तीन खंडों में लिखी। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर' तथा 'दशद्वार से सोपान तक'।

निधन : 18 जनवरी, 2003

प्रवास की डायरी : कुछ विशिष्ट पन्ने

रचना सार : प्रस्तुत रचना में बच्चन जी द्वारा लिखित डायरी के वे अंश हैं जिन्हें उन्होंने अपने विभिन्न समयांतराल में प्रवास के समय लिखे थे। इन अंशों में एक लेखक की जिन्दगी के उन दिनों की यादें हैं जब वे शोध कार्य की पूर्णती के लिए लाइब्रेरी में ज्यादा समय बिताते थे। उन क्षणों में वे शोध कार्य से संबंधित नोट्स तो तैयार करते ही थे अक्सर काव्य लेखन भी कर डालते। ये अंश एक कवि के जीवन से महत्वपूर्ण दस्तावेज साबित होते हैं जो विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रेरणा देते हैं।

Scanned by CamScanner

प्रवास की डायरी : कुछ विशिष्ट पन्ने

गुरुवार, 8 मई, '52

दस बजे से मि. एफ.एल. लूकस का व्याख्यान था। 'समालोचना में शैली' पर ही चल रहा है। एक वाक्य उनका बहुत अच्छा लगा—'My idea of good writing is extreme vitality and extreme control blended into a unity of being; poetry is the highest type of writing because it combines the vitality of vision and imagination with the control of prosody—vitality and control as embodied in a disciplined soldier.' मुझे वड्र्सवर्थ के Law और impulse की भी याद आ रही थी।

दिन में यु.ला. में ईट्स का आत्मचरित पढ़ता रहा। Unity of being पर जो बात मि. लूकस ने कही थी उसकी प्रतिध्वनि ईट्स में भी मिली। उन्होंने एक जगह लिखा था, "...There could be no aim for poet and artist except expression of a 'unity of being' like that of a perfectly proportioned human body."

कवि और कलाकार को अपने सृजन को व्यक्तित्व की एकता तो देनी ही चाहिए; इसके लिए उसे अपने में व्यक्तित्व की एकता प्राप्त भी करनी होगी।

पाँच बजे से मिल लेन में प्रसिद्ध इतिहासकार जी.एम. ट्रिविलियन के सभापतित्व में मि. लिपमैन का 'अमरीका की विदेश नीति' पर व्याख्यान था। भाषण बहुत ही स्पष्ट, सरल, सुलझा था। आज केवल प्रथम भाग हुआ। कल पूरा होगा।

रात को आधुनिक कवि प्लोमर की कविताएँ पढ़ीं।

अमरीका की विदेश नीति का इतना प्रचार है फिर भी वह आवश्यक समझता है कि उसके विद्वान् अन्य देशों में जाकर उसकी नीति को समझाएँ। आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज में इंग्लैंड के सबसे अधिक बुद्धिमान नवयुवक मौजूद हैं। इनमें से ही आगे चलकर कितने ऊँचे-ऊँचे राज्यपदों के अधिकारी होंगे। उनके बीच प्रचार राजनीतिक दूरन्देशी है। जो आज केम्ब्रिज की राय है वह कल इंग्लैंड की राय होगी। भारत की विदेश-नीति के सम्बन्ध में यहाँ भारी भ्रम है। भारत सरकार कुछ

इसी प्रकार के प्रचार का काम नहीं कर सकती? दूतावासों का कार्य सरकारी क्षेत्रों तक सीमित रहता है। जन-सम्पर्क स्थापित करने लिए दूसरे तरह के लोगों को आना चाहिए। अकेले पंडित नेहरू के वक्तव्यों से यह नहीं होगा।

आधुनिकता का कोई भी रूप हमारे मन में हो, यह तो मानना पड़ेगा कि आधुनिकता की दौड़ में योरोप आज आगे है। एक तरह से योरोप हमारे लिए आधुनिकता का पर्याय हो गया है। आधुनिकता का एक बाह्य रूप है जो उसकी एक भीतरी मनोवृत्ति भी है। आधुनिक बनने के प्रयत्न में सम्भव है हम योरोप के बाह्य रूप के निकट आ जाएँ। हमारी भीतरी मनोवृत्ति न योरोपीय हो सकेगी, न होनी चाहिए और न होने में हमारा कल्याण है। पर योरोप की इकाई के प्रति अत्यधिक सचेत होने के कारण कहीं हम उसे रूढ़ न बना दें। उसे आधुनिकता के सन्दर्भ में उत्तरोत्तर विकसित, परिष्कृत, उदात्त और व्यापक भी होना चाहिए। आधुनिकता की दौड़ में हमें एक आँख योरोप पर रखनी होगी—उसके बाह्य पर—केवल एक; दूसरी—भीतर को देखने वाली—अपने देश की मनोभूमि पर। हमारी मनोवृत्ति की विशिष्टता विश्व की प्रगति में अपना विशिष्ट योगदान दे सकती है।

रविवार, 8 जून, '52

देर से आँख खुली। इतवार समझकर घबराहट नहीं हुई। कविता की एक साफ़ कॉपी तैयार की। कविता कितना उलझा लेती है। मुझे इसके हमले से आगाह रहना चाहिए। ख़तरनाक चीज़ है। हर वक्त अपने को याद दिलाते रहो, यहाँ किसलिए आए हो, किसलिए हो; कविता तो घर पर भी लिख सकते थे, शोध का काम यहीं कर सकते हो। तीन दिन से क्या किया है?

एक बार सिलसिला टूटता है तो फिर से शुरू करने में दिक्कत होती है। सिलसिला टूटने का भी एक सिलसिला चल पड़ता है।

लंच के बाद थोड़ी देर के लिए सो गया। जैसे आज दिन को सोने से पिछली कई रातों को देर से सोने या उखड़ी-उखड़ी नींद सोने की कमी पूरा कर लूँगा। बहुत अच्छी नींद आई। कविता समाप्त करने के बाद मुझे हमेशा गहरी नींद आती है, जैसे कोई सिर पर चढ़ा भारी क़र्ज़ उतारकर सोए। 'एक दिन मैंने लिया था काल से कुछ श्वास का ऋण, आज भी उसको चुकाता ले रहा वह क्रूर गिन-गिन, ब्याज में मुझसे उगाहा है हृदय का गान उसने...।' पर यह ब्याज कम होता नहीं जान पड़ता। 'दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा।' 'अनृण्ये' होकर क्या कभी चादर तानकर सो सकूँगा। ब्याज 'गान' के रूप में ही नहीं है मुझ पर। वह तो सुख से

Scanned by CamScanner

अदा किया जा सकता था और भी कई रूपों में है—उसे अश्रु, स्वेद, रक्त से अदा करना होगा। पर रुको...तुम कविता की दुनिया में फिसलने को ही हो।

पाँच बजे नींद खुली। कुछ पत्रिकाएँ कई दिनों से पड़ी थीं देखता रहा। खाने की घंटी के पाँच मिनट पहले मादमोज़ेल ने दरवाजा खटखटाया—आप तो गायब ही हो गए। उन्हें पिछले दो-तीन दिनों का हिसाब दिया। कोई इतनी भी केयर करे तो मन को बड़ा अच्छा लगता है। यहाँ कोई किसी की परवाह नहीं करता। हर आदमी एक बड़े अजीब ढंग से अकेला है। पर अकेलेपन के खिलाफ़ किसी के मुँह पर शिकायत नहीं है। सबने उसे अनिवार्य तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया है और आत्मनिर्भर होने को तत्पर है।

खाने के बाद कहीं घूमने जाना चाहता था। आज दिन-भर कमरे से बाहर नहीं निकला था, पर बाहर पानी बरस रहा था, बादल घिरे थे। डिग में ही रहने का निश्चय किया।

थोड़ी देर बाद मि. बेग आ गए। हमारी यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे, अंग्रेजी और फारसी में एम.ए. किया था, लॉ भी। विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गए। वहाँ सरकारी नौकरी में हैं। आजकल ईस्ट बंगाल में पोस्टेड हैं। कोलम्बो प्लान में केम्ब्रिज आए हैं। राज्य-प्रबन्ध का कोर्स कर रहे हैं। इलाहाबाद के पुराने परिचितों के बारे में पूछताछ करते रहे। वे चाहते थे कि उनके साथ किसी बार या सैलून में चलकर कुछ पियूँ। मैंने अपनी मजबूरी बताकर उनसे माफ़ी चाही। पेरिस होकर आए थे। पेरिस की बहुत तारीफ़ कर रहे थे—वहाँ की इमारतों, मूर्तियों में जो उच्चकोटि की कला है वह लन्दन में नहीं। वहाँ की आर्ट गैलरी के आगे लन्दन की आर्ट गैलरी बहुत 'पुअर' है। जीवन का प्रवाह फ्रांस में इंग्लैंड की तुलना में अधिक मुक्त है। वे करीब एक-डेढ़ घंटे बैठे रहे।

गए तो मादमोज़ेल की विज़िट रिटर्न करने के लिए मैं उनके कमरे में गया। कुछ देर बैठा। कॉफ़ी पी। मैं ज़्यादा देर बैठना चाहता था। दिन को सोया था, जल्दी तो नींद आनेवाली नहीं थी, पर उनकी मेज पर कुछ काम फैला था। कमरे में आकर मैंने 'कोलोनेड' से ईट्स पर एक लेख पढ़ा। नोट्स भी लिये।

बुधवार, 25 जून, '52

एलेन ने अमेरिका के टिकटों का एक पूरा एलबम ही भेज दिया है। किसी समय उसे टिकटों को एकत्र करने का शौक था। अब नहीं रह गया। सब शौक किसी-न-किसी दिन खत्म हो जाता है। एलबम अमित को भेज दूँगा तो खुश होगा।

दिन-भर लाइब्रेरी में काम करता रहा।

रायल इंडिया सोसायटी का पत्र मिल गया।

मुझे 27 को आक्सफ़र्ड जाना है। एक जुलाई को वापस आऊँगा। वाधम कॉलेज में ठहरना है। संयोग ही है, सी.एम. बावरा इसके वार्डेन हैं, महाराजाकृष्ण रसगोत्रा इसी कॉलेज में रहे थे।

खाना खाने के बाद मेला देखने चला गया। लीथान को साथ ले जाना चाहता था, पर वह आज खाने पर था ही नहीं, बाद को भी नहीं दिखा। मेले में अकेले होना भी एक अनुभव है। मैंने प्राय: ऐसा अनुभव किया है। अकेले में आदमी उदास हो सकता है, खुश नहीं हो सकता। अकेले में खुश हो सकना शायद बहुत बड़ी उपलब्धि है।

किसी मेले में जाकर मनुष्य अपने पूरे जीवन का पर्यवेक्षण करता है—बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक का—बच्चे से लेकर वृद्ध तक मेले के प्रति क्या-क्या भाव दिखाते हैं? यह दुनिया भी एक मेला है—इसे बच्चा जिस दृष्टि से देखता है, वृद्ध उस दृष्टि से नहीं देखता। वास्तव में हर अवस्था के लोग मेले को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। बच्चा मेले में मिल जाता है, उसी का एक भाग—एक अंग बन जाता है। उसकी उत्सुकता, उसका उत्साह, उसका आनन्द मेले को देखकर जहाँ बढ़ता है वहाँ वह मेले को भी कुछ उल्लास, कुछ रंगीनी दे जाता है। वृद्ध मेले में आते हैं, पर वे मेले से बाहर रहते हैं; वे उसे देखते हैं, उससे कुछ पाने की गरज से नहीं; देखने में ही प्रसन्न हो जाते हैं—बच्चे, जवान आनन्द ले रहे हैं, उन्हें इसी की खुशी है—उन्हीं में शायद वे अपने विगत जीवन की विभिन्न श्रेणियों को स्मरण करते हैं। ऐसा स्मरण कुछ सुख-सन्तोष देता होगा तभी तो आते हैं, मेले में। पर मेले से कुछ लेने का समय अब बीत चुका है। शायद अकबर का शेर है :

दुनिया का हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ;
बाजार से गुजरा हूँ खरीदार नहीं हूँ।

Scanned by CamScanner

रामकुमार वर्मा

रामकुमार वर्मा का जन्म 15 सितम्बर, 1905 को हुआ।

डॉ. रामकुमार वर्मा हिन्दी-एकांकी के जन्मदाताओं में हैं। अपने साहित्यिक जीवन का आरम्भ उन्होंने कविता से किया। पर एकांकी लेखन का जो क्रम सन् 30 से चला, वह कभी भी नहीं टूटा। स्वच्छंदतावादी कवि होने के कारण वे स्वभावत: आदर्शवादी हैं। वास्तविकता को अपने एकांकियों की आधारशिला मानकर भी वे घटनाओं को एक सुनिश्चित आदर्शात्मक दिशा देने के पक्ष में हैं। यथार्थवाद के नाम पर गन्दे, फूहड़ और वासनात्मक चित्र उकेरने में उनकी रुचि नहीं है। उनके अधिकांश पात्र शिक्षित नागरिक हैं। अत: उनकी भाषा में नागरिकता की झलक दिखाई पड़ती है।

सामाजिक एकांकियों के अतिरिक्त उन्होंने ऐतिहासिक एकांकी भी लिखे हैं। ऐतिहासिक एकांकियों और नाटकों में इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं की जाती, बल्कि उसे नए सन्दर्भों में पुन: सर्जित किया जाता है। वर्मा जी ने ऐतिहासिक इतिवृत्तों को अच्छी तरह आत्मसात् करके उन्हें आज के मनोवैज्ञानिक धरातल पर अवतरित किया है, जिसके फलस्वरूप उनमें मानवीय अन्त:संघर्ष अपनी सघनता में मुखरित हो उठे हैं।

उन्होंने 'रजतरश्मि' की भूमिका में लिखा है—'सभी नाटक ऐतिहासिक कथावस्तु से सम्बन्ध रखते हैं। इस दिशा में मुझे इतिहास के अध्ययन के साथ-साथ तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पूरी तैयारी भी करनी पड़ी है। इस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पात्रों के चरित्र को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित करने की दृष्टि रखी गई है। यह दृष्टि जहाँ एक बार विकसित हो गई, पात्रों का विकास भी अपने आप होने लगता है।' 'औरंगज़ेब की आखिरी रात' पर उपर्युक्त कथन पूरे तौर पर घटित होता है।

एकांकी संग्रह : पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चारुमित्र, विभूति, सप्तकिरण, रूपरंग, कौमुदी महोत्सव, रजतरश्मि, रिमझिम आदि।

निधन : 1990

औरंगज़ेब की आखिरी रात

रचना सार : मानसिक संघर्ष और घनीभूत अन्तर्द्वंद्व का चित्रण करनेवाला यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एकांकी है। औरंगज़ेब के जीवन की अन्तिम रात है। इस रात में उभरता हुआ उसका अतीत उसे चैन नहीं लेने देता। औरंगज़ेब इस्लाम का सच्चा अनुयायी था पर उसके अनेक क्रियाकलाप उसके उसूलों के खिलाफ थे। उसकी अन्तरात्मा उसको कोसती है कि उसने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा। इस्लाम के नाम पर दूसरों को धोखा देता रहा। पता नहीं कितने बेगुनाहों का सिर कलम किया गया, कितने मासूमों को दीवार में चुनवाया गया। राजगद्दी के लिए भाइयों को कत्ल करने में कोई संकोच नहीं हुआ। अब्बाजान को कैदखाने में डाल दिया गया। सारे गुनाह अँधेरे में चीख की तरह मुखर हो उठे।

"ओह...कितना अँधेरा है, खुदा! हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्जा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को कैद किया, वे सब तेरे बच्चे! तेरे बंदों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर—कुरान की कसम खाकर मुराद भाई से सुलह की और फिर...और फिर उसका खून...!"

इस एकांकी में एक अंक और एक ही दृश्य है। इसलिए पहाड़ी नदी की-सी गत्वरता आ गई है। यह जरूरी नहीं है कि एक अंक में एक ही दृश्य हो। पर अनेक दृश्यों के कारण गत्वरता में शैथिल्य आ जाता है। यह एकांकी मंच पर खेला जा सकता है और रेडियो से प्रसारित भी किया जा सकता है। इसलिए इसमें नाट्य ध्वनियों की प्रमुखता है। इससे मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ाव, शून्यता-मुखरता को पूरे घनत्व में बुन दिया गया है। भाषा का गहन टेक्श्चर, संरचना को सहज में ही रूपायित कर देता है।

Scanned by CamScanner

औरंगज़ेब की आखिरी रात

पात्र

आलमगीर औरंगज़ेब : मुगल सम्राट
ज़ीनत-उन्निसा बेगम : आलमगीर औरंगज़ेब की पुत्री
करीम : एक सिपाही
हकीम और क़ातिब

स्थान : अहमदनगर का किला
समय : 18 फरवरी, 1707
रात्रि के 3 बजे।

[बीजापुर और गोलकुंडा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरंगज़ेब ने मराठों का अन्त करने का निश्चय किया तो उन्हें अपनी असफलता स्पष्ट दीख पड़ने लगी।

उन्होंने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को सपरिवार बन्दी बना लिया और उनके सामने इस्लाम-धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रखा, तो शम्भाजी ने घृणा के साथ प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरंगज़ेब के प्रति अत्यन्त कटु शब्दों का व्यवहार किया।

फलस्वरूप शम्भाजी बड़ी निर्दयता के साथ कत्ल किए गए। उनके कत्ल होते ही मराठों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। सत्रह वर्षों तक भयंकर संघर्ष होता रहा। इधर मुगल-सेना दिनोंदिन विलासी बन रही थी, फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती थी।

सन् 1706 में औरंगज़ेब ने देखा कि उनकी सेना अब अत्यन्त विशृंखलित और आलसी हो गई है। राज्य की आर्थिक दशा भी चिन्ताजनक हो रही है। लड़ाई की हानि 'जजिया' कर से भी पूरी नहीं हो रही है। जलालुद्दीन अकबर के समय से संचित आगरा और दिल्ली के किलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है, तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है।

राज्य की इस दुरवस्था के साथ वे अब वृद्ध हो गए हैं। पहले जैसी शक्ति अब उनके शरीर में नहीं रही। उनका विजय-स्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है। उनकी चिन्ताएँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। अन्त में हताश होकर अहमदनगर लौट आए हैं।

इस समय वे अहमदनगर के किले में बीमार पड़े हुए हैं। उनका शरीर टूट चुका है। उन्हें ज्वर और खाँसी है। इस समय उनकी अवस्था 89 वर्ष की है। एक साधारण-से पलंग पर लेटे हुए हैं। सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में जरी की हल्की पट्टियाँ हैं।

वे एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुए हैं। दुबला-पतला शरीर, कटी-छँटी सफेद दाढ़ी। नाक लम्बी किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वे सफेद लम्बा कुरता पहने हुए हैं, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है, जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जड़ा है। हाथ में तसबीह है।

आलमगीर की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलिन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उनके दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उनकी पुत्री ज़ीनत-उन्निसा बेगम बैठी हुई है। उसकी आयु 40 वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रंग की रेशमी सलवार और प्याजी रंग की ओढ़नी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेटी कसी

Scanned by CamScanner

हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंकित हैं।

कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु सारे वायुमंडल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादान जल रहे हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिनी ओर ज़ीनत-उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का मन्द झोंका आ रहा है। उससे घने अन्धकार के बीच में आकाश के तारे दिखाई पड़ रहे हैं।

आलमगीर के सामने कोने की ओर सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पंख फड़फड़ा देता है। पलंग से कुछ हटकर सिरहाने की ओर एक तिपाई है जिस पर दवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। उसके समीप एक ऊँचे स्टैंड पर लम्बे मुँहवाली सोने की सुराही है, जिसमें गुलाबजल रखा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला कपड़े से ढँका हुआ है।

परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक बेचैनी से खाँसते हैं, फिर एक गहरी और भारी साँस लेकर शून्य की ओर देखते हुए ज़ीनत से कहते हैं—]

आलम : खाँसी एक लमहे के लिए नहीं रुकती...कोई दवा उसे नहीं रोक सकती, ज़ीनत! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती...यह मौत की आवाज़ है। इसे कौन रोक सकता है? *(फिर खाँसते हैं)*...मौत की आवाज़।

ज़ीनत : *(धैर्य के स्वरों में)* नहीं जहाँपनाह! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जाएगी। हकीमों ने...।

आलम : *(बीच ही में)* हकीमों ने...हकीमों ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज नहीं है, बेटी! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज़ है, जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है। *(मुँह बिगाड़कर)* उखड़े। कहाँ तक रोकेंगे हम? *(खाँसते हैं)* कितने बलवाइयों को नेस्तनाबूद

किया, कितने गदर रोके, लेकिन...लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती, बेटी! रुके भी कैसे? *(शिथिल स्वरों में)* अब आलमगीर आलमगीर नहीं है।

ज़ीनत : नहीं, जहाँपनाह! आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है। आपके तेवर देखकर अफगानिस्तान भी घुटने टेकता है। राजपूत, जाट, मराठे और सिख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते।

आलम : लेकिन शिवाजी ले सकता था। हमारी थोड़ी-सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया। उसकी वजह से जिन्दगी-भर परेशान रहा। लेकिन था बहादुर और दिलेर...खैर, 'काफिर वजहन्नुम रफ्त' *(खाँसते हैं।)* उसका बेटा शम्भाजी...*(रुक जाते हैं और गहरी साँस लेते हैं।)*

ज़ीनत : छोड़िए इन बातों को, जहाँपनाह! ये बातें इस वक्त दिल और दिमाग दोनों को खराब करनेवाली हैं। आप जैसे ही अच्छे होंगे...।

आलम : *(बीच ही में)* अब अच्छे नहीं हो सकते, ज़ीनत! चन्द घड़ियों की जिन्दगी! कौन जाने कब खामोशी आ जाए! लेकिन, बेटी! हमने एक दिन भी आराम नहीं किया। *(खाँसते हैं।)* एक दिन भी नहीं। राजपूत जैसी कौम पर हुकूमत करना जिन्दगी का आराम नहीं, सबसे बड़ी मेहनत है। मराठों की हिम्मत पस्त करना जिन्दगी का सबसे बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया, बेटी! वह हमने किया। लेकिन अब...अब हम कमजोर हो गए हैं। अब कुछ नहीं कर सकेंगे। *(ठंडी साँस लेकर कलमा पढ़ते हैं)* ला इलाह इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह...।

ज़ीनत : आप सब कुछ कर सकेंगे, जहाँपनाह! अच्छा! अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिए *(दवा देने के लिए उठती है)* हकीम साहब दे गए हैं।

आलम : *(तीव्र स्वर में)* क्या हकीम साहब खुद नहीं आए?

ज़ीनत : आए थे। बड़ी देर तक आपका इन्तजार करते रहे। आप होश में नहीं थे। वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गए हैं। उन्होंने अभी फिर आने को कहा है।

आलम : जो दवा वह दे गए हैं, वह उन्हें चखाई गई थी? *(खाँसते हैं)*

Scanned by CamScanner

ज़ीनत : जी, मैंने भी चखी थी। दवा में किसी तरह का शक नहीं है।

आलम : यह अहमदनगर है बेटी! शिया रियासत बीजापुर और गोलकुंडा के करीब। दुश्मनी दोस्ती में छिपकर आती है। जिन्दगी में यह हमेशा याद रखो।

ज़ीनत : आपका कहना सही है, जहाँपनाह! लेकिन दवा मैंने खुद चखकर देख ली है।

आलम : हमारे सामने नहीं चखी गई, ज़ीनत! लेकिन खैर, कोई बात नहीं। दवा खाएँगे...लेकिन थोड़ी देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ! क्या करें दवा खाकर *(जोर से खाँसी आती है)*... अच्छा लाओ, खाएँ तुम्हारी दवा। आबेहयात से बढ़कर...।

[आलमगीर हाथ बढ़ाते हैं। ज़ीनत प्याले में दवा डालकर देती है। आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखते हैं। सोचते हुए एक बार रुकते हैं फिर थोड़ी-सी पीते हैं।]

आलम : *(गला साफ कर)* पी ली तुम्हारी दवा बेटी! इस दवा में जायके के साथ तुर्शी भी है। हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है।

ज़ीनत : लेकिन आपने सब तुर्शी जायके में तब्दील कर ली है।

आलम : नहीं, ज़ीनत! मराठों ने ऐसा नहीं होने दिया। हम कुरान पाक की कसम खाकर कहते हैं कि हम मराठों का नामोनिशान मिटाने में अपनी सारी सल्तनत की बाजी लगा देते, लेकिन...लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया। कमजोरी और बुढ़ापे ने हमें बेबस कर दिया। *(ठहरकर)* हमारे बहुत-से काम अधूरे पड़े हैं! काश, हमारी जिन्दगी के दिन अभी खत्म...न होते...!

ज़ीनत : *(उत्साह से)* अभी आप बहुत दिनों तक सलामत रहेंगे, आलमपनाह!

आलम : *(विह्वल होकर)* ओ, फिर एक बार कहो ज़ीनत! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं। ओफ्...अगर हमारी जिन्दगी के दिन अभी खत्म न होते! हम एक बार फिर शमशीर लेकर मैदाने-जंग में जाते, बागियों से कहते—कम्बख्तो! आलमगीर कमजोर नहीं है। उसकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं। घुटने टेककर गुनाहों की माफी माँगो, नहीं तो काफ़िरो! दोज़ख का रास्ता ख़ून की नहर से है। हमारी शमशीर से कटो और दोज़ख में दाख़िल हो...!

ज़ीनत : आप आराम करें, जहाँपनाह! नहीं तो आपकी तबीयत और भी खराब हो जाएगी।

आलम : इससे जियादह और क्या खराब होगी ज़ीनत! जब हम मौत के दरवाज़े पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं। चाहे जब वह खुल जाए। और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा। देर नहीं हो सकती। मौत भी डरती होगी कि देर हो जाने से कहीं आलमगीर सजा न दें। *(खाँसी)* जिन्दगी-भर सजा! सजा *(रुकते हुए)* अब्बाजान... को...भी आँजहानी शाहेजहाँ की...। *(सोचते हैं)*

ज़ीनत : आलमपनाह! तज़किरे न उठाएँ।

आलम : *(भौंहों में बल देकर)* क्यों न उठाएँ? ज़िन्दगी-भर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उसका तज़किरा भी न उठाएँ? लेकिन, ज़ीनत! हमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की। हमने गुनाह कहाँ किए? कुराने पाक की रूह से, शरअ से...इस्लाम का नाम दुनिया में बुलन्द करने के लिए—जिहाद के लिए, जो काम हमने किए, क्या उनका नाम गुनाह है? क़ाफ़िरों को जहन्नुम रसीद किया... क्या यह गुनाह है? उपनिषद् पढ़नेवाले दारा से सल्तनत छीनी...क्या यह गुनाह है? नमूना-ए-दरबार-ए-इलाही में क्या मुझसे गुनाह हुए? आलमगीर जिन्दा पीर...! लेकिन कोई आवाज़ कानों में कहती है कि आलमगीर! तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा! ज़ीनत! तू *('तू' पर जोर)* बतला, यह आवाज़ ठीक है? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को ग़लत समझा?

ज़ीनत : *(शान्ति से)* आपसे कोई ग़लती नहीं हुई, जहाँपनाह!

आलम : *(शून्य में देखते हुए)* हजारों सतनामियों को क़त्ल किया... दारा, शुजा, मुराद को तख्ते-ताऊस का हक नहीं दिया और बाप को सात बरस तक...लम्बे सात बरस तक...।

ज़ीनत : लेकिन आलमपनाह! अगर गौर से देखा जाए तो शहंशाहे शाहजहाँ को नजरबन्द करना गलत नहीं कहा जा सकता। अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मजार देखते! क्या उन्हें तकलीफ न होती? आपने उन्हें उस तकलीफ से बचा लिया।

Scanned by CamScanner

आलम : लेकिन उस तकलीफ के पैदा करने का जिम्मा किसका है? हमारा। हमने ही लाहौर में दारा की कब्र बनवाई। हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेजकर अब्बाजान का महल कैदखाने में तब्दील कराया...! उस दास्तान को तुम जानती हो?

ज़ीनत : जहाँपनाह! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दुहरवाना चाहते हैं? आप आराम कीजिए। आपकी तबीयत ठीक नहीं है।

आलम : तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है। *(शून्य में देखते हुए)* आधी रात थी...कमरे में सिर्फ एक शमा जल रही थी...दूसरी शमा शहंशाह शाहजहाँ की आँखों में झिलमिला रही थी। वह चारपाई पर तसवीरे-संग की तरह लेटे हुए थे। उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखाई देनेवाले ताजमहल पर जमी हुई थीं...हल्की चाँदनी थी। शहंशाह ने जहाँआरा से कहा—जहाँआरा! आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को तो कैद नहीं करेगा...?

ज़ीनत : *(आग्रह के स्वरों में)* जहाँपनाह...।

आलम : *(उसी स्वर में)* बादशाह की जबान तालू से सट गई थी...गला सूख रहा था। गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फ़रमाया—मुमताज! हमारी बेगम! ताज हमें पत्थरों से नहीं, आँसुओं से बनवाना चाहिए था...काश, यह मुमकिन हो सकता!

ज़ीनत : *(सहानुभूति के साथ)* उन्हें बहुत तकलीफ थी, आलमपनाह! लेकिन इस वक्त यह सोचना बेकार है। रात जियादह बीत रही है।

आलम : *(चौंककर तसबीह फेरते हुए)* क्या कहा? रात जियादह बीत रही है? आज हमारे लिए भी शायद वही मौत की रात है। लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है। *(ठहरकर)* हम इस लायक हैं भी नहीं, ज़ीनत! ज़िन्दगी में हमने कुछ नहीं किया, सिर्फ लड़ाइयाँ ही लड़ी हैं! उन्हीं में हमने फतह हासिल की है, लेकिन आज...आज ज़िन्दगी में हमें शिकस्त ही मिली...भारी शिकस्त। हमने अब्बाजान को कैद नहीं किया, इस आखिरी वक्त में अपने चैनो-सुकून को ही कैद किया। आज इतने बरसों के बाद अब्बाजान की चीख हमारे कानों में आ रही है...प्यास से उनका गला सूख रहा है। उनकी आवाज़ में कितना दर्द है...तुम सुन रही हो...? नहीं? उनकी हसरत-भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है।

ज़ीनत : *(अत्यन्त सांत्वना के स्वरों में)* जहाँपनाह! कहीं कुछ नहीं है। आप सोने की कोशिश कीजिए। जो कुछ हुआ, उसे भूल...।

आलम : *(बीच ही में)* नहीं भूल सकते, ज़ीनत! हमने अपनी रूह नींव में दफन कर सल्तनत की इमारत खड़ी की है। आज रूह तड़पकर करवट लेना चाहती है। वह चीख रही है। तुम उसकी आवाज़ भी नहीं सुनना चाहतीं?

ज़ीनत : जहाँपनाह! खुदा को याद कीजिए। सोने की कोशिश कीजिए। रात आधी से जियादह वीत चुकी है।

आलम : ज़िन्दगी उससे जियादह बीत चुकी है। *(नेपथ्य की ओर उँगली उठाकर)* देखती हो यह अँधेरा? कितना डरावना! कितना खौफनाक! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है। गोया यह हमारी ज़िन्दगी हो! इसमें कभी सुबह नहीं होगी, ज़ीनत! अगर होगी भी तो वह इसके काले समंदर में डूब जाएगी। इस अँधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जाएगा। *(रुककर)* ओह...कितना अँधेरा है! खुदा, हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्जा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को कैद किया, वे सब तेरे बच्चे! तेरे बन्दों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर...कुरान की क़सम खाकर मुराद...भाई मुराद से सुलह की और फिर...और फिर उसका खून...*(खाँसी आती है और फिर निश्चेष्ट हो जाते हैं।)*

ज़ीनत : *(घबराहट के स्वर में)* जहाँपनाह! जहाँपनाह! *(फिर पुकारकर)* करीम! करीम!

[करीम सिपाही का प्रवेश। वह अदब से सलाम करता है।]

ज़ीनत : *(आदेश के स्वर में)* हकीम साहब को फौरन यहाँ आने की इत्तिला करो। बादशाह सलामत की तबीयत खराब होती जा रही है। फौरन जाओ। हकीम साहब अमीरों के दूसरे कमरे में होंगे। फौरन...।

करीम : जो हुक्म। *(अदब के साथ सलाम कर प्रस्थान)*

[ज़ीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। वह एक पंखे से हवा करती है। आलमगीर

Scanned by CamScanner

होश में आते हैं। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलकर ज़ीनत को घूरकर देखते हैं।]

आलम : *(काँपते हुए स्वरों में)* कौन...? अब्बाजान! *(आँखें फाड़कर)* तुम?... तुम ज़ीनत हो? अब्बाजान कहाँ गए? अभी तो यहाँ आए थे। *(सोचते हुए)* जर्द था उनका चेहरा...आँखों में आँसू थे। *(ठंडी साँस लेकर)* इतने बड़े शहंशाह की आँखों में आँसू? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिए और कहा—शहंशाहे आलमगीर! हमें हमारा बेटा औरंगज़ेब वापस कर दो...! बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है...उसे हमें वापस कर दो...! *(कुछ ठहरकर)* लेकिन, ज़ीनत! वह बेटा कहाँ है? उसने तो अपने अब्बाजान को कैद किया है। *(इसी समय कमरे में टँगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंककर देखते हैं)*...यह परिंदा अपने पर फैलाकर हमसे कुछ कह रहा है...क्या कहेगा? इसे भी तो हमने सोने के पिंजड़े में कैद किया है! *(ज़ीनत की ओर आग्रह से)* ज़ीनत! इस पिंजड़े का दरवाज़ा खोल दो! *(ज़ीनत पिंजड़े का दरवाज़ा खोलती है)* उसे निकालो। *(ज़ीनत परिंदा पकड़कर निकालती है)* उड़ा दो उसे। *(ज़ीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देखकर सन्तोष की गहरी साँस लेते हैं)* आ...जा...द! *(कुछ रुककर)* हम अब्बाजान को इस तरह आजाद नहीं कर सके! हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिंदे की किस्मत भी नसीब नहीं हुई!

ज़ीनत : लेकिन, आलमपनाह! बादशाह तो न जाने कब के दुनिया की कैद से निकलकर आजाद हो गए। अब किस बात का मलाल है? आप अपनी तबीयत सँभालिए। मैंने हकीम साहब को बुलवाया है वे आते ही होंगे।

आलम : *(ज़ीनत की बात जैसे उन्होंने सुनी ही नहीं)* परिंदे की किस्मत... बादशाह की किस्मत नहीं हो सकी...! इस अँधेरे में उस परिंदे की किस्मत जागी है। वह खुश होकर शोर कर रहा है। बचपन में दारा भी इसी तरह शोर करता था। *(रुककर)*

कुछ वैसी ही आवाज़ आ रही है। *(सुनते हुए)* वह देखो। यह आ रही है *(रुककर)* लेकिन यह आवाज़ कैसी है! इस खौफनाक अँधेरे में यह आवाज़ जैसे मुँह फाड़कर खाने को दौड़ रही है! यह आई! ज़ीनत! आवाज़ सुनती हो!

ज़ीनत : *(आश्चर्य से)* कैसी आवाज़? कौन-सी आवाज़! जहाँपनाह!

आलम : *(आँखें फाड़कर)* अरे, इतने जोर से आवाज़ आ रही है और तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती? यह देखो। *(सुनते हुए)* फिर आई। यह हर लमहे तेज होती जा रही है। ज़ीनत! *(पुकारकर)* ज़ीनत! यह आवाज़! *(चीखकर)* यह खौफनाक... आवाज़!

ज़ीनत : *(धैर्य के स्वरों में)* कोई आवाज़ नहीं है, जहाँपनाह! आपकी तबीयत में घबराहट है। इसी वजह से ऐसा खयाल पैदा हो रहा है। *(विश्वासपूर्वक)* कहीं कोई आवाज़ नहीं है। आप अपने को सँभालने की कोशिश करें।

आलम : *(घबराहट से कुछ उठकर)* नहीं, नहीं, यह आवाज़ बराबर आ रही है। कोई चीख रहा है! *(संकेत कर)* यह देखो, अँधेरे में यह कौन झाँक रहा है? *(जोर से)* कौन? *(पुकारकर)* सिपहसालार?

ज़ीनत : *(समीप होकर)* कोई नहीं है, जहाँपनाह! सिपहसालार की जरूरत नहीं है।

आलम : *(घबराहट से भर्राए हुए स्वर में)* यह खिड़की के पास कौन है! *(संकेत करते हुए)* कराहता हुआ, चीखता हुआ। ओह, उसने फिर चीख भरी, अरे दारा...! *(काँपते हुए)* दारा! तुम हो! हमने तुम्हारा खून नहीं किया! हमने नहीं किया, दारा! हुसेनखाँ जबरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस आया। हमने उसे हुक्म नहीं दिया था। और...और *(काँपकर)* तुम्हारा सिर कहाँ है दारा? तुम्हारा सिर किधर गया? *(आलमगीर उठ खड़ा होता है। फिर लड़खड़ाते हुए)* हम खोजकर लाएँगे। हम अभी खोजकर लाएँगे। *(हाथ फैलाते हुए)* तुम्हारा इतना खूबसूरत सिर...।

[ज़ीनत उन्हें रोककर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर अचेत हो जाता है।]

Scanned by CamScanner

ज़ीनत : *(अपने आँचल से अपने माथे का पसीना पोंछते हुए)* जहाँपनाह...!

[करीम का प्रवेश।]

करीम : *(अदब से सलाम करके)* शाहजादी! हकीम साहब तशरीफ लाए हैं।

ज़ीनत : *(शीघ्रता से)* फौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक्त।

करीम : *(सलाम कर)* जो हुक्म! *(शीघ्रता से प्रस्थान।)*

ज़ीनत : *(कम्पित स्वर में आँखों में आँसू भरकर)* क्या जानती थी कि अहमदनगर में यह सब होगा! या खुदा! *(आलमगीर को चादर उढ़ाती है।)*

[हकीम साहब का प्रवेश। लम्बी दाढ़ी, काला चोगा, सिर पर अमामा, सफेद पाजामा और जरी के जूते। साथ में दवाओं का एक सन्दूकचा।]

हकीम : *(बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद ज़ीनत को सलाम करता है)* आदाब!

ज़ीनत : *(कम्पित स्वर में)* आलमपनाह को होश नहीं है, हकीम साहब! *(उठकर हकीम साहब के पास आती है)* आज रात को आलमपनाह की तबीयत बहुत ही खराब रही। जाने उन्हें क्या हो गया है! जागते हुए ख्वाब देखते हैं और चीख उठते हैं! एक लमहा उन्हें चैन नहीं है। *(करुण स्वर में)* अब आप ही मेरे नाखुदा हैं! तबीयत घबराती है। जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए, जल्दी अच्छा कर दीजिए।

हकीम : जहाँपनाह को होश नहीं है! *(गम्भीर और सान्त्वना के स्वरों में)* घबराइए नहीं, घबराइए नहीं, शाहजादी! खुदा पर भरोसा रखिए! इंशाअल्लाह, बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जाएँगे। देखिए, मैं दवा देता हूँ। बादशाह सलामत अभी होश में आए जाते हैं। घबराने की कोई बात नहीं।

ज़ीनत : *(विकृत स्वर में)* मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ!

हकीम : इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पंखा झलें। मैं उन्हें होश में आने की दवा देता हूँ।

[हकीम अपने सन्दूकचे में से एक डिबिया निकालते हैं। ज़ीनत पंखा झलती है।]

हकीम : *(डिबिया का ढक्कन खोलते हुए)* अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है?

ज़ीनत : खाँसी में बहुत आराम है। पहले तो वे हर बात कहने में खाँसते थे। आपकी दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गई, लेकिन घबराहट बहुत जियादह बढ़ गई है। *(पंखा झलती है)*

हकीम : घबराहट भी दूर हो जाएगी। *(आलमगीर की नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले जाता है)* अभी जहाँपनाह को होश आता है। आप सब्र करें।

ज़ीनत : उनकी बेचैनी देखकर तो मैं बिलकुल ही घबरा गई थी। मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रक्खा। अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन?

हकीम : जहाँपनाह की खिदमत करना मेरा पहला फर्ज है।

ज़ीनत : इसीलिए तो मैंने आपके पास फौरन खबर भेजी।

हकीम : मैं खबर पाते ही हाजिर हुआ। *(आलमगीर पर गहरी नज़र डालकर)* देखिए, देखिए! बादशाह सलामत को होश आ रहा है। पंखा जरा धीमा करें।

[आलमगीर के ओठों में कुछ स्पंदन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। फिर हल्की अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं। ज़ीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक।]

ज़ीनत : *(उत्साह से)* होश आ गया! होश आ गया!!

हकीम : बादशाह सलामत को आदाब अर्ज करता हूँ। *(दरबारी ढंग से सलाम करता है।)*

आलम : *(धीमे स्वर में)* पा...नी...!

[ज़ीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाबजल निकालकर आगे बढ़ाती है।]

ज़ीनत : जहाँपनाह, यह पानी...!

[आलमगीर उठने की कोशिश करता है। हकीम उन्हें उठने में सहारा देता है। आलमगीर पानी पीने के लिए झुकते हैं। लेकिन दूसरे क्षण रुक जाते हैं।]

Scanned by CamScanner

मुरादबख्श ने अपनी ढाल पर तलवार रोक, राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया कि वह हाथी के पैरों पर आ गिरा। उसका केसरिया बाना खून से लथपथ होकर जमीन पर फैल गया, और! इस सबका बदला मुरादबख्श को क्या मिला! ओह... पा...नी...।

[ज़ीनत फिर पानी पिलाती है।]

ज़ीनत : हुजूरेआली! आपसे दस्तबस्ता अर्ज है कि आप अब कुछ न फरमाएँ। ऐसी बातें करके आप अपनी हालत और खराब कर लेते हैं।

आलम : *(उतावली से)* इस वक्त हमें मत रोको, ज़ीनत-उन्निसा! हमें मत रोको। हम कहेंगे, जरूर कहेंगे। बुझने के पहले शमा की लौ भड़क उठती है। हमारी याददाश्त भी ताजी हो रही है। एक-एक तसवीर आँखों के सामने आ रही है। हम हाथी पर बैठ कर सैरगाह जा रहे हैं। आगे-पीछे हिन्दुओं का बेशुमार मजमा है! वे चीख-चीखकर कह रहे हैं कि आलमपनाह, जजिया माफ कर दीजिए। लेकिन हम माफ कैसे कर सकते हैं? दकन की लड़ाइयों का खर्च कहाँ से आएगा? हम कहते हैं...तुम काफिर हो? जजिया नहीं हटेगा। वे लोग हमारे रास्ते पर लेट जाते हैं। हमारा हाथी आगे नहीं बढ़ रहा है। हम गुस्से में आकर पीलवान को हुक्म देते हैं—इन कमबख्तों पर हाथी चला दो। हाथी आगे बढ़ता है, और सैकड़ों चीखें हमारे कान में पड़ती हैं।...हम हँसकर कहते हैं—काफिरो, तुम्हारी यही सजा है। जजिया माफ नहीं हो सकता...नहीं हो सकता...!

ज़ीनत : *(आँखों में आँसू भरकर)* आलमपनाह!

आलम : *(उसी स्वर में)* आज वह हाथी हमारे सामने झूम रहा है ज़ीनत, हमारा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहा है...। इसकी दवा तुम्हारे हकीम साहब के पास नहीं है।

ज़ीनत : *(कातर स्वर में)* आलमपनाह, आप यह दवा पी लीजिए। इस दवा से आपको बहुत फायदा होगा। *(दवा का प्याला आगे बढ़ाती है।)*

आलम : *(भारी साँस लेकर)* जिसने सारी ज़िन्दगी खून का जाम पिया है उसे दवा का जाम क्या फायदा करेगा? इसे फेंक दो ज़ीनत, इसे खिड़की की राह फेंक दो।

ज़ीनत : आलमपनाह! यह दवा...*(हिचकती है।)*

आलम : *(तीव्र स्वर में)* ज़ीनत! हम अब भी हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। हमारे हुक्म की शमशीर अब भी तेज है। फेंको यह दवा।

[ज़ीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है।]

आलम : *(सन्तोष से)* हम खुश हुए *(ठहरकर)* सोचो, जो दवा हकीम ने नहीं चखी, वह दवा हमारे काम की नहीं है। अहमदनगर का हकीम आगरे और दिल्ली का हकीम नहीं है।

ज़ीनत : तो जहाँपनाह! वह दवा मैं चख लेती।

आलम : ज़ीनत, ज़िन्दगी-भर हमने अपने ही मकान में आग लगाई है। मरते वक्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते...? क्या हम हकीम को दवा चखने का हुक्म नहीं दे सकते थे? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है ज़ीनत! दुआ पर भरोसा है। हमारे लिए दुआ करो...हमारे लिए दुआ करो...!

ज़ीनत : *(हाथ बाँधकर ऊपर देखती हुई)* जहाँपनाह सलामत रहें... जहाँपनाह सलामत रहें...जहाँपनाह...आ...मी...न...*(आँखें बन्द कर लेती है।)*

[करीम का प्रवेश]

करीम : *(सलाम करके)* शाहजादी, क़ातिब हाजिर है।

आलम : *(चौंककर खुशी के स्वर में)* क्या क़ातिब आ गया? आ गया? इसी वक्त उसे हमारे रूबरू हाजिर करो। हमारे पास जियादह वक्त नहीं है।

करीम : *(सलाम कर)* जो हुक्म। *(शीघ्रता से प्रस्थान।)*

आलम : *(सन्तोष की साँस लेकर)* क़ातिब आ गया, बेटी। काश! यह हमारी सारी जिन्दगी की दास्तान बड़े हरफ़ों में दर्ज करता। हमारे बेटों के लिए यह बहुत बड़ी नसीहत होगी। आलमगीर के आखिरी वक्त में सच्ची ज़िन्दगी पैदा होती। *(तसबीह*

Scanned by CamScanner

फेरकर कलमा पढ़ता है) ला इलाही इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह।

ज़ीनत : *(आँख में आँसू भरकर)* अब्बाजान! *(गला रुँध जाता है।)*

आलम : रोओ मत बेटी! हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो। आखिरी वक्त में अपनी बेटी की आवाज़ से हमारी कब्र में फूल बिछ जाएँगे, उसके आँसुओं के कतरों से हमारे गुनाह धुल जाएँगे। हमारी बेटी ज़ीनत! *(उसका हाथ अपने हाथ में लेता है।)*

[क़ातिब का प्रवेश। ढीला-ढाला इबा (चोगा), कमर में कमरबंद, सिर पर साफा, सफेद पाजामा, कामदार जूता। वह आकर शाही सलाम करता है।]

आलम : *(शीघ्रता से)* क़ातिब, तुम आ गए? हम अपने बेटों को खत लिखाना चाहते हैं। जल्दी लिखो। हमारे पास वक्त बहुत थोड़ा है। लिखना शुरू करो। *(आलमगीर आँखें बन्द कर लेते हैं।)*

क़ातिब : *(सिर झुकाकर)* जी इरशाद!

[क़ातिब बैठकर लिखने की मुद्रा धारण करता है। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है। फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलता है। क़ातिब लिखता जा रहा है।]

आलम : *(धीरे-धीरे)* सलाम अलेकुम...आजम, हमारे बेटे, हम जा रहे हैं...। हम ज़िन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाए, लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिये जा रहे हैं! तुम उखूव्वत, अम्न व एतेमाद पर खयाल रखना...। यह सारी दुनिया हेच है। हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा...जिस्म से गरमी निकल गई है, अब कोयलों का ढेर बाकी है...हाथ-पैर सूखे दरख्त की शाखों की तरह सख्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रक्खी हुई है...खुदा से दूर हूँ...और दिल में कोई सुकून नहीं है...हमारे लिए कौन-सी सजा होगी... वह सोचा भी नहीं जा सकता।...खुदा की रहमत पर हमारा

पूरा यकीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जाएँ? अब हमने समंदर में अपनी किश्ती डाल दी है...खुदा हाफिज...।

ज़ीनत : *(आँखों में आँसू भरे हुए)* अब्बाजान!

आलम : *(आँख बन्द किए हुए)* कामबख्श, हमारे बेटे...।

ज़ीनत : *(क़ातिब की ओर इशारा करके)* लिखो! *(क़ातिब लिखता है।)*

आलम : हम अकेले जा रहे हैं। तुम बेसहारे हो, इसका हमें मलाल है...? लेकिन इससे क्या फायदा...? जो सजाएँ हमने दी हैं...जो गुनाह हमने किए हैं...जो बेइंसाफियाँ हमने की हैं... इन सबका अंजाम हम अपने आगोश में लिये हैं...हम तुम्हें खुदा पर छोड़ते हैं। अपनी माँ उदयपुरी को तकलीफ मत देना...! मैं रुखसत होता हूँ...अलविदा...!

[थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है।]

ज़ीनत : *(करुण स्वर में)* अब्बाजान, आप ऐसा खत क्यों लिखा रहे हैं?

आलम : *(ज़ीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर)* ज़ीनत, मेरी बेटी! इस ज़िन्दगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा...! इस खाक के पुतले को कफन और ताबूत की जेबाइश की जरूरत नहीं...इस बदनसीब को जमीन में यों ही दफन कर देना... इस मुश्तेखाक को पहली ही मंजिल पर सुपुर्दे-खाक कर दिया जाए...हमें खुशी होगी अगर हमारी कब्र पर कुदरती सब्ज मखमल की चादर बिछी होगी...*(कुछ देर ठहरकर)* आँजहानी, हमारे गुनाहों को बख्श दीजिए...। दारा...! शुजा...! मुराद...!

[इसी समय बाहर 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनि में अजान होती है। आलमगीर ध्यान से सुनते हैं। उनके ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, फिर एक झटके के साथ सिर उठाकर अजान आने की दिशा में नेपथ्य की ओर देखते हैं।]

Scanned by CamScanner

आलम : *(तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देखकर रुकते, किन्तु स्पष्ट स्वरों में)* अल्ला...हो...अक...।

['अकबर' का अन्तिम अंश 'बर' ओठों में ही रह जाता है और तकिए पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है।]

ज़ीनत : *(शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर रुँधे हुए कंठ से)* आलमपनाह...अब्बा...जान...!

[कोई जवाब नहीं मिलता। बाहर अजान होती रहती है। ज़ीनत अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई आलमगीर का मुँह सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढाँप देती है। क़ातिब घुटने टेककर दोनों हथेलियाँ जोड़कर मन-ही-मन कुछ पढ़ने लगता है।]

[परदा गिरता है।]

नामवर सिंह

हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह का जन्म 28 जुलाई, 1926 को वाराणसी (उत्तर प्रदेश) के जीयनपुर गाँव में हुआ। वर्तमान समय में यह गाँव चन्दौली जिले में आता है। उन्होंने हिन्दी में एम.ए. और पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। शुरुवाती में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। 1959 में चन्दौली लोकसभा चुनाव में असफल होने पर उन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़ना पड़ा। बाद में वे सागर विश्वविद्यालय और जोधपुर विश्वविद्यालय से जुड़े रहे। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली में काफी समय तक अध्यापन का कार्य किया। वे हिन्दी के साथ-साथ उर्दू, बंगला एवं संस्कृत भाषा को भी जानते थे। उनकी मृत्यु 19 फरवरी, 2019 को नई दिल्ली में हुई।

नामवर सिंह हिन्दी जगत में आलोचक के रूप में परिचित रहे हैं। आलोचनात्मक रचनाओं में 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', 'छायावाद', 'इतिहास और आलोचना', 'कविता के नये प्रतिमान', 'दूसरी परम्परा की खोज' मौलिक रचनाएँ हैं। 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' यह उनकी गवेषणात्मक रचना है। उन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'शलाका सम्मान', 'महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान' से सम्मानित भी किया गया है। भाई काशीनाथ को लिखा पत्र 'काशी के नाम' इस पत्र संग्रह में संग्रहीत है।

काशी के नाम

रचना सार : प्रस्तुत पत्र नामवर सिंह के द्वारा भाई काशीनाथ सिंह को लिखा है। यह पत्र दो साहित्यकारों के बीच के वार्तालाप तथा पारिवारिक जिम्मेदारियों को दर्शाता है। भाई काशीनाथ सिंह को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी तथा आत्मनिर्माण करने को कहना अपने आपमें मौलिक है। उनका यह सन्देश आज नई पीढ़ी के लिए प्रेरक है। स्वयं की रूची के अनुसार अपना रास्ता स्वयं चुनने को कहना एक श्रेष्ठ आलोचक के द्वारा दिया गया सही सन्देश है। हिन्दी विषय के बारे में आत्मीयता, केरल का प्राकृतिक सौन्दर्य भी पत्र की मौलिकता को बढ़ाते हैं।

Scanned by CamScanner

काशी के नाम

कोचीन
25/6/55

प्रिय काशी,

तुम्हारा पत्र मुझे बंगलौर में ही 22 जून को मिल गया था लेकिन अवकाश और एकान्त की कमी के कारण जवाब न लिख सका। यहाँ मैं कल दोपहर से हूँ और कल रविवार की सुबह त्रिवेन्द्रम के लिए रवाना हो जाऊँगा, जहाँ से कन्याकुमारी जाना होता है। नारियल के पेड़ों से ढका यह सब्ज़ टापू अरब सागर तथा Back Water से घिरा है; वर्षा की झड़ी लगी है : सड़कें नदी बन गई हैं और घर टापू।

तुम लोगों के परीक्षा-फल से चित्त थोड़ा चंचल ज़रूर हो उठा था। भावी योजनाओं को कुछ धक्का लगा। रामजी चाहे जहाँ से बी.ए. में बैठें लेकिन पहले अध्यापकी के प्रमाण-पत्र की व्यवस्था तो करें। विद्या-मन्दिर में अब किस मुँह से जाएँगे? इस विषय में मैं स्वयं भी सोच रहा हूँ।

और तुम? प्रथम श्रेणी न मिलना कोई दुखद घटना नहीं है; सवाल अब यह है कि बी.ए. में तुम्हें प्रथम श्रेणी किस तरह ले आनी है तथा एम.ए. किस विषय से करना है। अपने बारे में सोचना तुम्हें ही है, मैं केवल सलाह दे सकता हूँ। मैं नहीं चाहता कि हर समय तुम्हें मेरा मुँह देखना पड़े या नया कदम उठाने से पहले मेरी सलाह की ज़रूरत पड़े। अब तुम बच्चे नहीं रहे; अकबर तुमसे सात साल छोटा था जब उसके कन्धों पर सारे हिन्दुस्तान का ख़तरों से घिरा हुआ साम्राज्य आ पड़ा था। आत्मनिर्भर बनो; आत्मनिर्भरता आत्मविश्वास की जननी है और आत्मविश्वास आत्मनिर्माण का जनक। अंग्रेज़ी में एम.ए. करने की बात यदि तय है तभी बी.ए. में अंग्रेज़ी लो अन्यथा अंग्रेज़ी लेकर बी.ए. का भी डिवीज़न चौपट मत करो। यह तो अभी से तय है कि अंग्रेज़ी लेकर तुम बी.ए. में फर्स्ट क्लास नहीं पा सकते। इसके समानान्तर दूसरा तथ्य भी है—यदि बी.ए. में कुल मिलाकर द्वितीय ही श्रेणी मिलती है तो फिर अंग्रेज़ी को छोड़ा क्यों जाए। कहीं ऐसा न हो कि प्रथम श्रेणी के

लिए अंग्रेज़ी छोड़ दें और उधर वह भी न मिले—'लतवो तर क जाय औ हथवो तर क जाय!' बाकी दो विषय कल्चर, हिन्दी और संस्कृत में से चुन लो! या तो कल्चर, हिन्दी, संस्कृत ले लो या फिर कल्चर, हिन्दी, अंग्रेज़ी। संस्कृत और हिन्दी में से हिन्दी ही अच्छी रहेगी।

यह मेरा सुझाव भर है; अपना हित स्वयं सोचो। उत्तरदायित्व तुम्हारा है और तुम्हारा ही रहेगा! फ़ार्म वग़ैरह पहले ही यानी निश्चित तिथि (जो शायद 30 जून है!) तक भर देना। रुपए पिताजी से ले लेना—आने पर सारी व्यवस्था मैं कर दूँगा। फ़ीस वग़ैरह दाख़िल कर देना। मैं किसी भी तरह 8 जुलाई से पहले न पहुँच सकूँगा।

पिताजी तथा माँ को चरण स्पर्श। विजय को स्नेह। गाँव-घर सबको यथायोग्य।

सस्नेह
नामवर

Scanned by CamScanner

हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई का जन्म मध्य प्रदेश के इटारसी के पास जमानी नामक स्थान पर 22 अगस्त, 1924 ई. को हुआ। नागपुर विश्वविद्यालय से इन्होंने हिन्दी में एम.ए. किया। कुछ वर्षों तक इन्होंने अध्यापन कार्य किया किन्तु लेखन के प्रति विशेष लगाव के कारण अध्यापन कार्य को छोड़कर पूर्णतया साहित्य सेवा में संलग्न हो गए। जबलपुर से इन्होंने वसुधा नामक साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन और प्रकाशन शुरू किया, कुछ वर्षों तक आर्थिक कारणों से यह पत्रिका बन्द हो गई। इनकी प्रतिभा निबन्ध तथा काव्य सृजन में प्रस्फुटित हुई है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं :

उपन्यास : 'रानी केतकी की कहानी', 'तट की खोज'।

कहानी संग्रह : 'हँसते हैं, रोते हैं', 'जैसे उनके दिन फिरे'।

निबन्ध संग्रह : 'तब बात और थी', 'भूत के पाँव पीछे', 'बेईमान की परत', 'पगडंडियों का जमाना', 'सदाचार का तावीज', 'शिकायत मुझे भी है', 'और अन्त में'। परसाई जी अपनी रचनाओं में 'व्यक्ति और समाज' की दुर्बलताओं और विडम्बनाओं पर गहरी चोट करते हैं। इनकी गणना हिन्दी के व्यंग्य सम्राट में की जाती है। इनका व्यंग्य व्यक्तिगत राग-द्वेष या सस्ते मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि उसके अन्तराल में कोई गहरा जीवन बोध व्यंजित होता है।

निधन : 1995 ई.

इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर

रचना सार : 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' में भारतीय पुलिस की कार्य पद्धति को व्यंग्यात्मक ढंग से उजागर किया गया है। इंस्पेक्टर मातादीन को भारत सरकार चाँद पर वहाँ की पुलिस व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त करने भेजा। मातादीन वहाँ की पुलिस को झूठ, फरेब तथा भ्रष्टाचार का ऐसा तौर-तरीका सिखाने में तत्पर

हो गए जिससे वहाँ की संस्कृति का विनाश होने लगा। लोग पुलिस के झूठे मुकदमे तथा आरोप से बचने के लिए पारस्परिक सहयोग, सेवा एवं सहायता का कार्य छोड़ने लगे। अत: 'चाँद' की सरकार के अनुरोध से इंस्पेक्टर मातादीन को भारत बुला लिया गया। लेखक प्रकारान्तर से भारतीय पुलिस की दूषित एवं मानव विरोधी गतिविधियों का खुलासा करता है? संस्कृति के विनाश में पुलिस की मुख्य भूमिका है।

Scanned by CamScanner

इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर

वैज्ञानिक कहते हैं, चाँद पर जीवन नहीं है। पर सीनियर पुलिस इंस्पेक्टर मातादीन (डिपार्टमेंट में एम.डी. सा'ब) कहते हैं, 'वैज्ञानिक झूठ बोलते हैं। वहाँ हमारे जैसे ही मनुष्यों की आबादी है।'

विज्ञान ने हमेशा इंस्पेक्टर मातादीन से मात खाई है। फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ कहता रहता है—छुरे पर पाए गए निशान मुलजिम की अँगुलियों के नहीं हैं, पर मातादीन उसे सजा दिला ही देते हैं।

मातादीन कहते हैं, 'ये वैज्ञानिक केस का पूरा इनवेस्टिगेशन नहीं करते। उन्होंने चाँद का उजला हिस्सा देखा और कह दिया, वहाँ जीवन नहीं है। मैं चाँद का अँधेरा हिस्सा देखकर आया हूँ। वहाँ मनुष्य जाति है।'

यह बात सही है, क्योंकि अँधेरे-पक्ष के मातादीन माहिर माने जाते हैं।

पूछा जाएगा, इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर क्यों गए थे? टूरिस्ट की हैसियत से या किसी फरार अपराधी को पकड़ने? नहीं, वे भारत की तरफ से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत गए थे। चाँद सरकार ने भारत सरकार को लिखा था, 'यों हमारी सभ्यता बहुत आगे बढ़ी है, पर हमारी पुलिस में पर्याप्त सक्षमता नहीं है। वह अपराधी का पता लगाने और उसे सजा दिलाने में अक्सर सफल नहीं होती। सुना है, आपके यहाँ रामराज है। मेहरबानी करके किसी पुलिस अफसर को भेजें, जो हमारी पुलिस को शिक्षित कर दे।'

गृहमंत्री ने सचिव से कहा, "किसी आई.जी. को भेज दो।"

सचिव ने कहा, "नहीं सर, आई.जी. नहीं भेजा जा सकता। प्रोटोकॉल का सवाल है। चाँद हमारा एक क्षुद्र उपग्रह है। आई.जी. के रैंक के आदमी को नहीं भेजेंगे। किसी सीनियर इंस्पेक्टर को भेज देता हूँ।"

तय किया गया कि हजारों मामलों के इनवेस्टिगेटिंग ऑफिसर सीनियर इंस्पेक्टर मातादीन को भेज दिया जाए।

चाँद की सरकार को लिख दिया गया कि आप मातादीन को लेने के लिए पृथ्वी-यान भेज दीजिए।

पुलिस-मंत्री ने मातादीन को बुलाकर कहा, "तुम भारतीय पुलिस की उज्ज्वल परम्परा के दूत की हैसियत से जा रहे हो। ऐसा काम करना कि सारे अन्तरिक्ष में डिपार्टमेंट की ऐसी जय-जयकार हो कि पी.एम. (प्रधानमंत्री) को भी सुनाई पड़ जाए।"

मातादीन की यात्रा का दिन आ गया। एक यान अन्तरिक्ष अड्डे पर उतरा। मातादीन सबसे विदा लेकर यान की तरफ बढ़े। वे धीरे-धीरे कहते जा रहे थे, 'प्रविसि नगर कीजै सब काजा, हृदय राखि कौसलपुर राजा।'

यान के पास पहुँचकर मातादीन ने मुंशी अब्दुल गफूर को पुकारा, "मुंशी!"

गफूर ने एड़ी मिलाकर सेल्यूट फटकारा। बोला, "जी, पेक्टसा!"

"एफ.आई.आर. रख दी है?"

"जी, पेक्टसा!"

"और रोजनामचे का नमूना?"

"जी, पेक्टसा!"

वे यान में बैठने लगे। हवलदार बलभद्दर को बुलाकर कहा, "हमारे घर में जचकी के बखत अपने खटला (पत्नी) को मदद के लिए भेज देना।"

बलभद्दर ने कहा, "जी, पेक्टसा!"

गफूर ने कहा, "आप बेफिक्र रहें, पेक्टसा! मैं अपने मकान (पत्नी) को भी भेज दूँगा खिदमत के लिए।"

मातादीन ने यान के चालक से पूछा, "ड्राइविंग लाइसेंस है?"

"जी है, साहब!"

"और गाड़ी में बत्ती ठीक है?"

"जी, ठीक है।"

मातादीन ने कहा, "सब ठीक-ठाक होना चाहिए, वरना हरामजादे का बीच अन्तरिक्ष में चालान कर दूँगा।"

चन्द्रमा से आए चालक ने कहा, "हमारे यहाँ आदमी से इस तरह नहीं बोलते।"

मातादीन ने कहा, "जानता हूँ, वो! तुम्हारी पुलिस कमजोर है। अभी मैं उसे ठीक करता हूँ।"

मातादीन यान में कदम रख ही रहे थे कि हवलदार रामसजीवन भागता हुआ आया। बोला, "पेक्टसा, एस.पी. साहब के घर से कहे हैं कि चाँद से एड़ी चमकाने का पत्थर लेते आना।"

मातादीन खुश हुए। बोले, "कह देना बाई सा'ब से, जरूर लेता आऊँगा।"

वे यान में बैठे और यान उड़ चला। पृथ्वी के वायुमंडल से यान बाहर निकला ही था कि मातादीन ने कहा, "अबे, हॉर्न क्यों नहीं बजाता?"

Scanned by CamScanner

चालक ने जवाब दिया, "आसपास लाखों मील में कुछ नहीं है।"

मातादीन ने डाँटा, "मगर रूल इज रूल। हॉर्न बजाता चल।"

चालक अन्तरिक्ष में हॉर्न बजाता हुआ यान को चाँद पर उतार लाया। अन्तरिक्ष अड्डे पर पुलिस अधिकारी मातादीन के स्वागत के लिए खड़े थे। मातादीन रौब से उतरे और उन अफसरों के कन्धों पर नजर डाली। वहाँ किसी के स्टार नहीं थे। फीते भी किसी के नहीं लगे थे। लिहाजा मातादीन ने एड़ी मिलाना और हाथ उठाना जरूरी नहीं समझा। फिर उन्होंने सोचा, मैं यहाँ इंस्पेक्टर की हैसियत से नहीं, सलाहकार की हैसियत से आया हूँ।

मातादीन को वे लोग लाइन में ले गए और एक अच्छे बँगले में उन्हें टिका दिया।

एक दिन आराम करने के बाद मातादीन ने काम शुरू कर दिया। पहले उन्होंने पुलिस लाइन का मुलाहजा किया।

शाम को उन्होंने आई.जी. से कहा, "आपके यहाँ पुलिस लाइन में हनुमानजी का मन्दिर नहीं है। हमारे रामराज में हर पुलिस लाइन में हनुमानजी हैं।"

आई.जी. ने कहा, "हनुमान कौन थे? हम नहीं जानते।"

मातादीन ने कहा, "हनुमान का दर्शन हर कर्तव्यपरायण पुलिसवाले के लिए जरूरी है। हनुमान सुग्रीव के यहाँ स्पेशल ब्रांच में थे। उन्होंने सीता माता का पता लगाया था। एब्डक्शन का मामला था, दफा 362। हनुमानजी ने रावण को सजा वहीं दे दी। उसकी प्रॉपर्टी में आग लगा दी। पुलिस को यह अधिकार होना चाहिए कि अपराधी को पकड़ा और वहीं सजा दे दी। अदालत में जाने का झंझट नहीं, मगर यह सिस्टम अभी हमारे रामराज में भी चालू नहीं हुआ। हनुमानजी के काम से भगवान रामचन्द्र बहुत खुश हुए। वे उन्हें अयोध्या ले आए और टौन ड्यूटी में तैनात कर दिया। वही हनुमान हमारे आराध्यदेव हैं। मैं उनकी फोटो लेता आया हूँ। उससे मूर्तियाँ बनवाइए और हर पुलिस लाइन में स्थापित करवाइए।"

थोड़े ही दिनों में चाँद की हर पुलिस लाइन में हनुमानजी स्थापित हो गए।

मातादीनजी उन कारणों का अध्ययन कर रहे थे जिनसे पुलिस लापरवाह और अलाल हो गई है। वह अपराधों पर ध्यान नहीं देती। कोई कारण नहीं मिल रहा था। एकाएक उनकी बुद्धि में एक चमक आई। उन्होंने मुंशी से कहा, "ज़रा तनखा का रजिस्टर बताओ।"

तनखा का रजिस्टर देखा, तो सब समझ गए। कारण पकड़ में आ गया।

शाम को उन्होंने पुलिस-मंत्री से कहा, "मैं समझ गया कि आपकी पुलिस मुस्तैद क्यों नहीं है। आप इतनी बड़ी तनख्वाहें देते हैं। सिपाही को पाँच सौ, हवलदार को सात सौ, थानेदार को हजार!—यह क्या मजाक है! आखिर पुलिस अपराधी को क्यों

पकड़े? हमारे यहाँ सिपाही को सौ और इंस्पेक्टर को दो सौ देते हैं तो वे चौबीस घंटे जुर्म की तलाश करते हैं। आप तनख्वाहें फौरन घटाइए।"

पुलिस-मंत्री ने कहा, "मगर यह तो अन्याय होगा। अच्छा वेतन नहीं मिलेगा तो वे काम ही क्यों करेंगे?"

मातादीन ने कहा, "इसमें कोई अन्याय नहीं है। आप देखेंगे कि पहली घटी हुई तनखा मिलते ही आपकी पुलिस की मनोवृत्ति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाएगा।"

पुलिस-मंत्री ने तनख्वाहें घटा दीं और दो-तीन महीनों में सचमुच बहुत फर्क आ गया। पुलिस एकदम मुस्तैद हो गई। सोते से एकदम जाग गई। चारों तरफ नजर रखने लगी। अपराधियों की दुनिया में घबराहट छा गई। पुलिस-मंत्री ने तमाम थानों के रिकॉर्ड बुलवाकर देखे। पहले से कई गुने अधिक केस रजिस्टर हुए थे। उन्होंने मातादीन से कहा, "मैं आपकी सूझ की तारीफ करता हूँ। आपने क्रान्ति कर दी। पर यह हुआ किस तरह?"

मातादीन ने समझाया, "बात बहुत मामूली है। कम तनखा दोगे, तो मुलाजिम की गुज़र नहीं होगी। सौ रुपयों में सिपाही बच्चों को नहीं पाल सकता। दो सौ में इंस्पेक्टर ठाठ-बाट मेनटेन कर सकता है? उसे ऊपरी आमदनी करनी ही पड़ेगी। और ऊपरी आमदनी तभी होगी जब वह अपराधी को पकड़ेगा। गरज कि वह अपराधों पर नजर रखेगा। सचेत, कर्तव्यपरायण और मुस्तैद हो जाएगा। हमारे रामराज के स्वच्छ और सक्षम प्रशासन का यही रहस्य है।"

चन्द्रलोक में इस चमत्कार की खबर फैल गई। लोग मातादीन को देखने आने लगे कि वह आदमी कैसा है जो तनखा कम करके सक्षमता ला देता है! पुलिस के लोग भी खुश थे। वे कहते, 'गुरु, आप इधर न पधारते तो हम सभी कोरी तनखा से ही गुज़र करते रहते।' सरकार भी खुश थी कि मुनाफे का बजट बननेवाला था।

आधी समस्या हल हो गई। पुलिस अपराधी पकड़ने लगी थी। अब मामले की जाँच-विधि में सुधार करना रह गया था। अपराधी को पकड़ने के बाद उसे सजा कैसे दिलाई जाए? मातादीन इन्तजार कर रहे थे कि कोई बड़ा केस हो जाए तो नमूने के तौर पर उसका इनवेस्टिगेशन कर बताएँ।

एक दिन आपसी मारपीट में एक आदमी मारा गया। मातादीन कोतवाली में आकर बैठ गए और बोले, "नमूने के लिए इस केस का 'इनवेस्टिगेशन' मैं करता हूँ। आप लोग सीखिए। यह क़त्ल का केस है! क़त्ल के केस में 'एविडेंस' बहुत पक्की होनी चाहिए।"

कोतवाल ने कहा, "पहले क़ातिल का पता लगाया जाएगा, तभी तो 'एविडेंस' इकट्ठा की जाएगी।"

Scanned by CamScanner

मातादीन ने कहा, "नहीं, उलटे मत चलो। पहले एविडेंस देखो, क्या कहीं खून मिला?—किसी के कपड़ों पर या और कहीं?"

एक इंस्पेक्टर ने कहा, "हाँ, मारनेवाले तो भाग गए थे। मृतक सड़क पर बेहोश पड़ा था। एक भला आदमी वहाँ रहता है। उसने उठाकर अस्पताल भेजा। उस भले आदमी के कपड़ों पर खून के दाग लग गए हैं।"

मातादीन ने कहा, "उसे फौरन गिरफ्तार करो।"

कोतवाल ने कहा, "मगर उसने तो मरते हुए आदमी की मदद की थी!"

मातादीन ने कहा, "वह सब ठीक है। पर तुम खून के दाग ढूँढ़ने और कहाँ जाओगे? जो एविडेंस मिल रहा है, उसे तो कब्जे में करो।"

वह भला आदमी पकड़कर बुलवा लिया गया। उसने कहा, "मैंने तो मरते आदमी को अस्पताल भिजवाया था। मेरा क्या कसूर है?"

चाँद की पुलिस उसकी बात से एकदम प्रभावित हुई। मातादीन प्रभावित नहीं हुए। सारा पुलिस महकमा उत्सुक था कि अब मातादीन क्या तर्क निकालते हैं।

मातादीन ने उससे कहा, "पर तुम झगड़े की जगह गए क्यों?"

उसने जवाब दिया, "मैं झगड़े की जगह नहीं गया। मेरा वहाँ मकान है। झगड़ा मेरे मकान के सामने हुआ।"

अब फिर मातादीन की प्रतिभा की परीक्षा थी। सारा महकमा उत्सुक देख रहा था।

मातादीन ने कहा, "मकान है, तो ठीक है। पर मैं पूछता हूँ, झगड़े की जगह जाना ही क्यों?"

इस तर्क का कोई जवाब नहीं था। वह बार-बार कहता, "मैं झगड़े की जगह नहीं गया। मेरा वहीं मकान है।"

मातादीन उसे जवाब देते, "सो ठीक है, पर झगड़े की जगह जाना ही क्यों?"

इस तर्क-प्रणाली से पुलिस के लोग बहुत प्रभावित हुए।

अब मातादीनजी ने इनवेस्टिगेशन का सिद्धान्त समझाया :

"देखो, आदमी मारा गया है, तो यह पक्का है कि किसी ने उसे जरूर मारा। कोई कातिल है। किसी को सजा होनी है। सवाल है—किसको सजा होनी है? पुलिस के लिए यह सवाल इतना महत्त्व नहीं रखता जितना यह सवाल कि जुर्म किस पर साबित हो सकता है या किस पर साबित होना चाहिए। कत्ल हुआ है, तो किसी मनुष्य को सजा होगी ही। मारनेवाले को होती है, या बेकसूर को, यह अपने सोचने की बात नहीं है। मनुष्य मनुष्य सब बराबर हैं। सबमें उसी परमात्मा का अंश है। हम भेदभाव नहीं करते। यह पुलिस का मानवतावाद है।

"दूसरा सवाल है, किस पर जुर्म साबित होना चाहिए। इसका निर्णय इन बातों से होगा—(1) क्या वह आदमी पुलिस के रास्ते में आता है? (2) क्या उसे सजा दिलाने से ऊपर के लोग खुश होंगे?"

मातादीन को बताया गया कि वह आदमी भला है, पर पुलिस अन्याय करे तो विरोध करता है। जहाँ तक ऊपर के लोगों का सवाल है—वह वर्तमान सरकार की विरोधी राजनीतिवाला है।

मातादीन ने टेबल ठोककर कहा, "फर्स्ट क्लास केस! एविडेंस! और ऊपर का सपोर्ट!"

एक इंस्पेक्टर ने कहा, "पर हमारे गले यह बात नहीं उतरती कि एक निरपराध भले आदमी को सजा दिलाई जाए!"

मातादीन ने समझाया, "देखो, मैं समझा चुका हूँ कि सबमें उसी ईश्वर का अंश है। सजा इसे हो या कातिल को, फाँसी पर तो ईश्वर ही चढ़ेगा न! फिर तुम्हें कपड़ों पर खून मिल रहा है। इसे छोड़कर तुम कहाँ खून ढूँढ़ते फिरोगे? तुम तो भरो एफ.आई.आर.।"

मातादीनजी ने एफ.आई.आर. भरवा दी। 'बखत जरूरत के लिए' जगह खाली छुड़वा दी।

दूसरे दिन पुलिस कोतवाल ने कहा, "गुरुदेव, हमारी तो बड़ी आफत है। तमाम भले आदमी आते हैं और कहते हैं, उस बेचारे बेकसूर को क्यों फँसा रहे हो? ऐसा तो चन्द्रलोक में कभी नहीं हुआ। बताइए, हम क्या जवाब दें? हम तो बहुत शर्मिन्दा हैं।"

मातादीन ने कोतवाल से कहा, "घबराओ मत। शुरू-शुरू में इस काम में आदमी को शर्म आती है। आगे तुम्हें बेकसूर को छोड़ने में शर्म आएगी। हर चीज का जवाब है। अब आपके पास जो आए, उससे कह दो, "हम जानते हैं कि वह निर्दोष है, पर हम क्या करें? यह सब ऊपर से हो रहा है।"

कोतवाल ने कहा, "तब वे एस.पी. के पास जाएँगे।"

मातादीन ने कहा, "एस.पी. भी कह दें कि ऊपर से हो रहा है।"

"तब वे आई.जी. के पास शिकायत करेंगे।"

"आई.जी. भी कहें कि सब ऊपर से हो रहा है।"

"तब वे लोग पुलिस-मंत्री के पास पहुँचेंगे।"

"पुलिस-मंत्री भी कहेंगे, 'भैया, मैं क्या करूँ? यह ऊपर से हो रहा है'।"

"तो वे प्रधानमंत्री के पास जाएँगे।"

"प्रधानमंत्री भी कहें कि 'मैं जानता हूँ, वह निर्दोष है, पर यह ऊपर से हो रहा है'।"

Scanned by CamScanner

कोतवाल ने कहा, "तब वे..."

मातादीन ने कहा, "तब वे क्या? तब वे किसके पास जाएँगे? भगवान के पास न? मगर भगवान से पूछकर कौन लौट सका है?"

कोतवाल चुप रह गया। वह इस महान प्रतिभा से चमत्कृत था।

मातादीन ने कहा, "एक मुहावरा-'ऊपर से हो रहा है', हमारे देश में पच्चीस सालों से सरकारों को बचा रहा है। तुम इसे सीख लो।"

केस की तैयारी होने लगी। मातादीन ने कहा, "अब चार-छह चश्मदीद गवाह लाओ।"

कोतवाल ने कहा, "चश्मदीद गवाह कोई कैसे मिलेंगे? जब किसी ने उसे मारते देखा ही नहीं, तो चश्मदीद गवाह कोई कैसे होगा?"

मातादीन ने सिर ठोंक लिया, "किन बेवकूफों के बीच फँसा दिया गवर्नमेंट ने! इन्हें तो ए बी सी डी भी नहीं आती।"

झल्लाकर कहा, "चश्मदीद गवाह किसे कहते हैं, जानते हो? चश्मदीद वह नहीं है, जो देखे—बल्कि वह है जो कहे कि मैंने देखा।"

कोतवाल ने कहा, "ऐसा कोई क्यों कहेगा?"

मातादीन ने कहा, "कहेगा। समझ में नहीं आता, कैसे डिपार्टमेंट चलाते हो! अरे, चश्मदीद गवाहों की लिस्ट पुलिस के पास पहले से रहती है। जहाँ जरूरत हुई, उन्हें चश्मदीद बना दिया। हमारे यहाँ ऐसे आदमी हैं जो साल में तीन-चार सौ वारदातों के चश्मदीद गवाह होते हैं। हमारी अदालतें भी मान लेती हैं कि इस आदमी में कोई दैवी शक्ति है, जिससे वह जान लेता है कि अमुक जगह वारदात होनेवाली है और वहाँ पहले से पहुँच जाता है। मैं तुम्हें चश्मदीद गवाह बनाकर देता हूँ। आठ-दस उठाईगीरों को बुलाओ जो चोरी, मारपीट, गुंडागर्दी करते हों। जुआ खिलाते हों या शराब उतारते हों।"

दूसरे दिन शहर के आठ-दस नवरत्न कोतवाली में हाजिर थे। उन्हें देखकर मातादीन गद्‌गद हो गए। बहुत दिन हो गए थे ऐसे लोगों को देखे, बड़ा सूना-सूना लग रहा था।

मातादीन का प्रेम उमड़ पड़ा। उसने कहा, "तुम लोगों ने उस आदमी को लाठी मारते देखा था न?"

वे बोले, "नहीं देखा साब! हम वहाँ थे ही नहीं।"

मातादीन जानते थे, यह पहला मौका है। फिर उन्होंने कहा, "वहाँ नहीं थे, यह मैंने माना। पर लाठी मारते देखा तो था।"

उन लोगों को लगा कि यह पागल आदमी है, तभी ऐसी ऊटपटाँग बात करता है। वे हँसने लगे।

मातादीन ने कहा, "हँसो मत, जवाब दो।"

वे बोले, "जब थे ही नहीं, तो कैसे देखा?"

मातादीन ने गुर्राकर देखा। कहा, "कैसे देखा, तो बताता हूँ। तुम लोग जो काम करते हो, सब इधर दर्ज हैं। हर एक को कम-से-कम दस साल जेल में डाला जा सकता है। तुम ये काम आगे भी करना चाहते हो या जेल जाना चाहते हो?"

वे घबराकर बोले, "सा'ब, हम जेल नहीं जाना चाहते।"

मातादीन ने कहा, "ठीक। तो तुमने उस आदमी को लाठी मारते देखा। देखा न?"

वे बोले, "देखा साब। वह आदमी घर से निकला और जो लाठी मारना शुरू किया, तो वह बेचारा बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़ा।"

मातादीन ने कहा, "ठीक है, आगे भी ऐसी वारदातें देखोगे?"

वे बोले, "सा'ब, जो आप कहेंगे, सो देखेंगे।"

कोतवाल इस चमत्कार से थोड़ी देर तो बेहोश हो गया। होश आया तो मातादीन के चरणों पर गिर पड़ा।

मातादीन ने कहा, "हटो। काम करने दो।"

कोतवाल पाँवों से लिपट गया। कहने लगा, "मैं जीवन-भर इन श्रीचरणों में पड़ा रहना चाहता हूँ।"

मातादीन ने आगे की सारी कार्यप्रणाली तय कर दी। एफ.आई.आर. बदलना, बीच में पन्ने डालना, रोजनामचा बदलना, गवाहों को तोड़ना—सब सिखा दिया।

उस आदमी को बीस साल की सजा हो गई।

चाँद की पुलिस शिक्षित हो चुकी थी। धड़ाधड़ केस बनने लगे और सजा होने लगी। चाँद की सरकार बहुत खुश थी। पुलिस की ऐसी मुस्तैदी भारत सरकार के सहयोग का नतीजा थी। चाँद की संसद ने एक धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया।

एक दिन मातादीनजी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। वे फूलों से लदे खुली जीप पर बैठे थे। आसपास जय-जयकार करते हजारों लोग। वे हाथ जोड़कर अपने गृहमंत्री की स्टाइल में जवाब दे रहे थे।

जिन्दगी में पहली बार ऐसा कर रहे थे, इसलिए थोड़ा अटपटा लग रहा था। छब्बीस साल पहले पुलिस में भरती होते वक्त किसने सोचा था कि एक दिन दूसरे लोक में उनका ऐसा अभिनन्दन होगा! वे पछताए-अच्छा होता कि इस मौके के लिए कुरता, टोपी और धोती ले आते!

भारत के पुलिस-मंत्री टेलीविजन पर बैठे यह दृश्य देख रहे थे और सोच रहे थे, मेरी सद्‌भावना यात्रा के लिए वातावरण बन गया।

Scanned by CamScanner

कुछ महीने निकल गए।

एक दिन चाँद की संसद का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। बहुत तूफान खड़ा हुआ। गुप्त अधिवेशन था, इसलिए रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई, पर संसद की दीवारों से टकराकर कुछ शब्द बाहर आए।

सदस्य गुस्से से चिल्ला रहे थे :

'कोई बीमार बाप का इलाज नहीं करता।'

'डूबते बच्चों को कोई नहीं बचाता।'

'जलते मकान की आग कोई नहीं बुझाता।'

'आदमी जानवर से बदतर हो गया। सरकार फौरन इस्तीफा दे।'

दूसरे दिन चाँद के प्रधानमंत्री ने मातादीनजी को बुलाया। मातादीन ने देखा, वे एकदम बूढ़े हो गए थे। लगा, ये कई रातें सोए नहीं हैं।

रुआँसे होकर प्रधानमंत्री ने कहा, "मातादीनजी, हम आपके और भारत सरकार के बहुत आभारी हैं। अब आप कल देश वापस लौट जाइए।"

मातादीन ने कहा, "मैं तो 'टर्म' खत्म करके ही जाऊँगा।"

प्रधानमंत्री ने कहा, "आप बाकी 'टर्म' का वेतन ले जाइए-डबल ले जाइए, ट्रिपल ले जाइए।"

मातादीन ने कहा, "हमारा सिद्धान्त है। हमें पैसा नहीं, काम प्यारा है।"

आखिर चाँद के प्रधानमंत्री ने भारत के प्रधानमंत्री को एक गुप्त पत्र लिखा।

चौथे दिन मातादीनजी को वापस लौटने के लिए अपने आई.जी. का ऑर्डर मिल गया।

उन्होंने एस.पी. साहब के घर के लिए एड़ी चमकाने का पत्थर यान में रखा और चाँद से विदा हो गए।

उन्हें जाते देख पुलिसवाले रो पड़े।

बहुत अरसे तक यह रहस्य बना रहा कि आखिर चाँद में ऐसा क्या हो गया कि मातादीनजी को इस तरह एकदम लौटना पड़ा? चाँद के प्रधानमंत्री ने भारत के प्रधानमंत्री को क्या लिखा था?

एक दिन वह पत्र खुल ही गया। उसमें लिखा था :

'इंस्पेक्टर मातादीन की सेवाएँ हमें प्रदान करने के लिए अनेक धन्यवाद। पर अब आप उन्हें फौरन बुला लें। हम भारत को मित्र देश समझते थे, पर आपने हमारे साथ शत्रुवत् व्यवहार किया है। हम भोले लोगों से विश्वासघात किया है।

आपके मातादीनजी ने हमारी पुलिस को जैसा कर दिया है, उसके नतीजे ये हुए हैं—कोई आदमी किसी मरते हुए आदमी के पास नहीं जाता, इस डर से कि वह कत्ल के मामले में फँसा दिया जाएगा। बेटा बीमार बाप की सेवा नहीं करता।

वह डरता है, बाप मर गया तो उस पर कहीं हत्या का आरोप न लगा दिया जाए। घर जलते रहते हैं और कोई बुझाने नहीं जाता-डरता है कि कहीं उस पर आग लगाने का जुर्म कायम न कर दिया जाए। बच्चे नदी में डूबते रहते हैं और कोई उन्हें नहीं बचाता। इस डर से कि उस पर बच्चे को डुबोने का आरोप न लग जाए। सारे मानवीय सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं। मातादीनजी ने हमारी आधी संस्कृति नष्ट कर दी है। अगर वे यहाँ रहे तो पूरी संस्कृति नष्ट कर देंगे। उन्हें फौरन रामराज में बुला लिया जाए।'

Scanned by CamScanner

सुधीश पचौरी

इनका जन्म 29 दिसम्बर, 1948 जनपद अलीगढ़ में हुआ तथा इनकी शिक्षा एम.ए. (हिन्दी) आगरा विश्वविद्यालय, पी-एच.डी. एवं पोस्ट डॉक्टोरल शोध (हिन्दी), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। और इस समय प्रो. हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्यरत। मार्क्सवादी समीक्षक, प्रख्यात स्तम्भकार, मीडिया विशेषज्ञ। मध्य प्रदेश साहित्य परिषद का रामचन्द्र शुक्ल सम्मान, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार से सम्मानित। इनकी चर्चित पुस्तकें नई कविता का वैचारिक आधार, कविता का अन्त। उत्तर-आधुनिक परिदृश्य, उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद, नवसाम्राज्यवाद और संस्कृति, नामवर के विमर्श (सं.), उत्तर-आधुनिक साहित्य विमर्श, दूरदर्शन : विकास से बाजार तक, देरिदा का विखंडन और विखंडन में 'कामायनी', मीडिया और साहित्य, टीवी टाइम्स, साहित्य का उत्तरकांड, अशोक वाजपेयी : पाठ कुपाठ (सं.), प्रसार भारती और प्रसारण परिदृश्य, दूरदर्शन : सम्प्रेषण और संस्कृति, स्त्री देह के विमर्श, आलोचना से आगे, मीडिया, जनतंत्र और आतंकवाद, निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद, विभक्ति और विखंडन, हिन्दुत्व और उत्तर आधुनिकता, मीडिया की परख, पॉपुलर कल्चर, भूमंडलीकरण, बाजार और हिन्दी, टेलीविजन समीक्षा : सिद्धान्त और व्यवहार, उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श, विदास बाबू की डायरी, फासीवादी संस्कृति और पॉप-संस्कृति।

स्त्री जो महज त्वचा है

रचना सार : सदियों से जिन दो सामाजिक वर्गों को हाशिए पर रखा जाता जा रहा है, वह दलित स्त्री है। परन्तु आधुनिकता के लक्षणों के प्रभावी होते जाने और लोकतांत्रिक-मूल्यों के प्रति जागरूकता और चेतना के प्रचार-प्रसार ने उपर्युक्त वर्गों को हाशिए से उठाकर अब चिन्ता की मुख्य-धारा में ला दिया है। 'स्त्री-विमर्श' ने स्त्री जाति की अस्मिता और पहचान को अत्यंत ही दृढ़ता के साथ रेखांकित किया है। आज की स्त्री 'असूर्यपश्या' नहीं रही। वह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सक्रिय

भागीदारी और हस्तक्षेप के द्वारा राष्ट्र के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विकास में योगदान कर रही है। परन्तु एक प्रश्न आज भी स्त्री के पक्ष को लेकर बना हुआ है जो पुरुषवादी मानसिकता से संचालित होता रहा है कि क्या स्त्री महज एक त्वचा है, एक देह मात्र है? भूमंडलीकरण और बाजार आधारित उपभोक्ता संस्कृति में स्त्री को क्या सचमुच महज एक देह और त्वचा से इतर समझा जाता है? सुधीश पचौरी ने वस्तुओं के विज्ञापन और बाजार के मूल्यों पर स्त्री की प्रस्तुति को अपने इस लेख का विषय बनया है। बाजार ने, बाजारू संस्कृति ने एक ऐसे सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया है जिसमें स्त्री को तरोताजा, कोमल, आकर्षक देह के रूप में ही देखे जाने और पाने की ललक बढ़ती जा रही है। "स्त्रियों को सीधे सम्बोधित तमाम अंग्रेजी, हिन्दी पत्रिकाएँ ऐसे विज्ञापनों से भरी होती हैं जो स्त्री के चेहरे की त्वचा और बालों के प्रसाधनों को विज्ञापित करती है। इन तमाम विज्ञापनों में 'गोराई' 'ताजगी' और आकर्षण जैसे शब्द बारम्बार प्रयुक्त होते हैं। स्त्रियों के लिए विज्ञापित वस्तुओं—खासकर प्रसाधन सामग्री आदि के लिए अनिवार्य शब्दकोश की तरह हैं। ये नए सौन्दर्यशास्त्र की आधारशिलाएँ हैं।

हम मानें या न मानें, प्रसाधन सामग्री और विज्ञापनों ने मिलकर हमारे समाज में स्त्री सौन्दर्य का एक नया मानक स्थापित कर दिया है। धीरे-धीरे हमारे बीच एक ऐसी स्त्री उठ खड़ी हुई है जो भयानक आकर्षक है। उसकी त्वचा चमकदार है। वह तरोजाता है। मुस्कान उसके चेहरे पर हमेशा रहती है। फिल्मों में, सीरियलों में, विज्ञापनों में तमाम जगह स्त्री का चेहरा युवा, चमकदार, तरोताजा और आक्रामक है। इस सौन्दर्यशास्त्र का आधार 'त्वचा' है। सारा ध्यान स्त्री के चेहरे पर है। 'तरोताजा' बनाये रखने का दर्शन कहता है कि मनुष्य का सौन्दर्य उसकी खाल में रहता है। इस तरह समूचा प्रसाधन तंत्र मूलत: एक खाल तंत्र में तब्दील हो गया है।'' कहने का तात्पर्य यह है कि बाहरी चकाचौंध और रँगने-पोतने, सजने-सँवरने और प्रदर्शन की मानसिकता ने हमें अन्दर से खोखला कर दिया है। हम आन्तरिक शक्ति, चिन्तन और विचार के पक्ष से दरिद्र होते जा रहे हैं। बाहरी दिखावा हमारी संस्कृति बनती जा रही है।

Scanned by CamScanner

स्त्री जो महज त्वचा है

महिलाओं में खास पठनीय एक अंग्रेजी पत्रिका के कुछ विज्ञापन इस प्रकार पढ़े जा सकते हैं :

एक लेप का विज्ञापन कहता है: 'मेरी जैसी त्वचा के लिए। यह लेप (लोशन)। हरी धरती पर, लेप की बोतल हलके बादामी रंग की पड़ी है। शीशी के पास लिखा है 'त्वचा इतनी तारोताजा... त्वचा इतनी स्वच्छ।' विज्ञापन का पाठ कहता है।

जिन्दगी आनंद है। और इतना सब करने की है। किन्तु अपनी त्वचा की खातिर वक्त निकालना जरूरी है। साबुन, पानी से धोने के बाद यह शीशी है जो आपकी त्वचा को चाहिए। रोजाना चेहरे पर लगाइए। एक ऐसे रंग को पाने के लिए जो सुन्दर लगे। वर्षा, आतप कुछ हो। देर रात में आयें। यह शीशी कोमल बनायेगी, झाइयाँ हटायेगी। इस भाषा को बोलनेवाला स्त्री का चेहरा बायें बाजू में है और गौर से देखें तो चेहरा बच्चों-सा लगता है। ताजगी, कोमलता और स्वच्छता का प्रतीक। शीशी के उपयोग का जबरदस्त प्रमाण।

एक अन्य विज्ञापन त्वचा-लेप के महत्व को समझाता है : 'एक खूबसूरत त्वचा स्त्री की बहुमूल्य सम्पदा है। हर स्त्री चाहती है कि उसकी त्वचा सुन्दर और कोमल दिखे। अब एक ऐसा लोशन आ गया, जो आपकी खाल की देखभाल करेगा, उसे छुए जाने योग्य बनाएगा।' दायीं ओर चमत्कारी शीशी है हल्के गुलाबी रंग में, बायें एक बूँद में एक सुन्दरी समझाती है : 'अमेरिकी और यूरोपीय लोगों की त्वचा सफेद होती है। भारतीय लोगों की खाकी होती है। धूप में पाँच मिनट खुली रहने पर यह त्वचा काली पड़ जाती है। इससे खाल को बचाना जरूरी है। उसे एक छाते या टोपी की जरूरत है। यह शीशी एक पर्दा बना देती है जो खाल को जलने नहीं देता।'

आगे पृष्ठ पलटें तो एक नीबूवाले साबुन का विज्ञापन आता है। इसमें झरने के बीच एक सुन्दरी साबुन के साथ अठखेलियाँ करती दिखती है। विज्ञापन का चित्र ही उसका संदेश है। फिर भी नीचे गहरे हरे पीले रंगों में लिखा है—'हल्की महक और उत्तेजक नीबू की ताजगी एक ताजा अनुभव।'

एक विज्ञापन गोरे रंग का पूरा शास्त्र ही रच डालता है : बायें बाजू एक साँवली लड़की उदास नीची नजर किये दिखती है। 'अगर आप इसे पढ़ेंगी तो गोरे होने के स्वप्न को साकार कर सकेंगी। दायें बाजू में एक रंगीन तसवीर है जिसमें एक लड़की खुश है। वह एक फिल्म अभिनेत्री है जो कहती है 'मेरे स्वप्न साकार हुए और मेरी दुनिया बदल गयी।' विज्ञापन के नीचे नारियल, खीरा, दूध आदि दिखाया गया है।

एक अन्य साबुन 'दोहरी ताजगी' दिखाता है। एक मर्द का गोरा चेहरा हँस रहा है। दो स्त्रियाँ दो तरफ से चूम रही हैं। फिर मुँहासा खत्म करनेवाली क्रीमवाला कहता है : 'उस मुँहासे को कैसे रोकें जो आपके चेहरे से आकर्षण को चुराता है।' एक साबुन के बारे में एक सुन्दरी कहती है : 'यह साबुन मेरी त्वचा की देखभाल जिस ढंग से करता है उसके उस ढंग से मुझे प्यार है।'

स्त्रियों को सीधे सम्बोधित तमाम अंग्रेजी हिन्दी पत्रिकाएँ और फैशन पत्रिकाएँ ऐसे विज्ञापनों से भरी होती हैं जो स्त्री के चेहरे की त्वचा और बालों के प्रसाधनों को विज्ञापित करती हैं। इन तमाम विज्ञापनों में 'गोराई', 'ताजगी' और 'आकर्षण' जैसे शब्द बारम्बार प्रयुक्त होते हैं। स्त्रियों के लिए विज्ञापित वस्तुओं प्रसाधन सामग्री आदि के लिए अनिवार्य शब्दकोश की तरह हैं। ये नये सौन्दर्यशास्त्र की आधार शिलाएँ हैं।

हम मानें या न मानें, प्रसाधन सामग्री और विज्ञापनों ने मिल कर हमारे समाज में स्त्री सौन्दर्य का एक नया मानक स्थापित कर दिया है। धीरे-धीरे हमारे बीच एक ऐसी स्त्री उठ खड़ी हुई है जो भयानक आकर्षक है। उसकी त्वचा चमकदार है। वह तरोताजा है। मुस्कान उसके चेहरे पर हमेशा रहती है। फिल्मों में, सीरियलों में, विज्ञापनों में तमाम जगह स्त्री का चेहरा युवा चमकदार तरोताजा और आक्रामक है।

इस सौन्दर्यशास्त्र का आधार 'त्वचा' है। समूचा बल ताजा, चमकदार और गोरी त्वचा पर है। सारा ध्यान स्त्री के चेहरे पर है। 'तरोताजा' बनाये रखने का दर्शन कहता है कि मनुष्य का सौन्दर्य, उसकी खाल में रहता है। इस तरह समूचा प्रसाधन तंत्र मूलत: एक खाल-तंत्र में तब्दील हो गया है।

आखिर इतनी तरोताजा खाल क्यों चाहिए? तिस पर स्त्रियों की खाल ही क्यों चाहिए? मर्दों की खाल क्यों नहीं? इसलिए कि मर्दों के लिए 'ताकत' का संदेश तय पाया गया है। मर्द 'ताकत' का प्रतीक माने जाते हैं। उन्हें लक्षित विज्ञापन उनकी कोमलता का बखान नहीं करते। 'कोमलता' स्त्री का विशेषण ठहरा। कोमलता हो तो 'मुरझायी' नहीं हो। कोमल हो कोई चीज और 'ताजा' न हो तो कोमलता दिखेगी कैसे? ताजा न हो तो 'आकर्षक' कैसे लगेगी? आकर्षक दिखना है तो 'कोमलता' को 'ताजा' होना होगा। हर सूरत में 'आकर्षक' दिखना अनिवार्य है। कारण? 'आकर्षण सौन्दर्य की जगह ले चुका है। प्रसाधनशास्त्र ने यह सिद्ध कर

Scanned by CamScanner

दिया है कि वह 'असुन्दर' को 'आकर्षक' बनाते हुए 'अनिवार्य' बना सकता है। अंग्रेजी के रूमानी कवियों ने सौन्दर्य को शाश्वत आनंद का कारण कहा। वह सौन्दर्य वायवीय या, अमूर्त था, भावना का था, हृदय का था। सौन्दर्य प्राय; द्रष्टा की दृष्टि या भावना में रहता था। वह अमर, शाश्वत और नित्य नवीनता से युक्त होता था, रमणीय वही होता था जो नित्य नया होता रहे। परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र में रूप-सौंदर्य से अधिक भाव सौन्दर्य पर जोर रहता था।

नये सौन्दर्यशास्त्र का सारा दारोमदार 'रूप' पर है। इसीलिए नखशिख रूप वर्णन का नया रीतिकाल एक उद्योग की शक्ल हो गया है। इस नये रीतिकाल ने पुराने रीतिकालीन दरबारी ग्राहक को हर जगह पैदा कर लिया है। विशाल मध्यवर्ग उन तमाम सुखों की लूट में व्यस्त है जो एक जमाने में सिर्फ सामन्तों राजाओं को उपलब्ध थे और जिनका एकाधिकार था। उपभोक्तावादी युग ने उस सामंतीय अहंकार की मूँछें मरोड़ कर धर दी हैं। सामान्य परिवार की लड़कियों के चेहरे रूपसज्जा में नूरजहाँ के चेहरे का मुकाबला करते हैं। कभी-कभी तो स्वयं नूरजहाँ प्रसाधन बेचने निकली होती है। विज्ञापन जगत के विशेषज्ञों ने कड़ी मेहनत से कुछ नुस्खे तैयार किये हैं। उनमें स्त्री के सामान्य भावों, गुणों और नाकनक्श का 'मानकीकरण' किया जाता है। रूप वैविध्य, जो प्रकृति का धर्म है, में ऐसे सामान्य सूत्र ढूँढ़ लिये गये हैं जो हर स्त्री के लिए प्रीतिकर हो सकते हैं। सुन्दर एवं आकर्षक दिखने की इच्छा एक उम्र में नैसर्गिक होती है, किन्तु बाल रँगने, झुर्रियाँ मिटाने और युवा दिखने की गारंटी करनेवाले विज्ञापन सबसे ज्यादा उन्हें फुसलाते हैं जो नैसर्गिक सौन्दर्य से अधिक कुछ और चाहते हैं।

स्त्री का मॉडल कोमल, युवा आकर्षक, सुन्दर और उत्तेजक ही हो सकता है। विज्ञापन जगत स्त्री की इस छवि को एक ही साथ उत्तेजित और मजबूत बनाता हुआ चलता है। त्वचा और चेहरे की देखभाल, केश एवं नाखूनों की देखभाल आदि की बढ़ती हुई चिन्ता है कि विज्ञापन शास्त्र ने मनुष्य की हमेशा जवान बने रहने की इच्छा को महाकाव्यात्मक विस्तार दे दिया है।

'हमेशा तरोताजा दिखें' 'हमेशा आकर्षक दिखें', 'हमेशा प्रभावशाली दिखें'—इन संदेशों में 'तरोताजा रहने' की जगह 'दिखने' पर अधिक जोर रहता है। 'दिखना' ही होता है। आप कैसे दिखते हैं, वही आपको 'होना' है। यदि आप दूसरे का ध्यान नहीं खींच सकते, तो आपका 'होना' कहाँ हुआ?

आजकल तो समूची देह ही हमलावर बना दी गयी है। त्वचा पर अतिरिक्त इस देहवाद का नया पहलू है। इससे पहले नेत्रों, गालों और बालों पर जोर था। आज से बीस-पचीस वर्ष पहले के विज्ञापन देखें तो पता चलता है कि प्रसाधन सामग्री त्वचा की चमक, ताजगी और कोमलता पर जोर न दे कर आँखों की नजर, केशों

की चमक और मजबूती और गालों की लाली पर जोर देती थी। त्वचा बुनियादी कैनवस नहीं थी। आज त्वचा यानी देह एक जीता-जगता कैनवस बना दिया गया है।

त्वचा को कैनवस, क्रीड़ास्थली और रंगस्थली बता देने के गहरे सांस्कृतिक अनुरोध हैं। चूँकि प्रसाधन सामग्री का सबसे बड़ा लक्ष्य स्त्री है, इसलिए त्वचा पर जोर देने के अर्थ भयावह हो उठते हैं। इन विज्ञापनों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि हम स्त्री नहीं, सिर्फ एक त्वचा के बारे में सोच रहे हैं। स्त्री त्वचा मात्र बना दी गयी है। सौन्दर्य का उद्योग स्त्री को मार कर उसकी खाल को उतार कर बेचता है।

और यह एक संयोग ही तो है कि आज से पचासेक वर्ष पहले जो देह क्रान्ति अमेरिका-यूरोप में शुरू हुई थी, वह अपने विकसित रूप में हमारे समाज में घट रही है। प्रसाधन उद्योग ने देशों की सीमाएँ तोड़ दी हैं। एक नया पश्चिमी सौन्दर्यशास्त्र हमारे बाजारों, घरों के ड्राइंगरूम तक फैला है। हजारों लाखों बार हम इस नये सौन्दर्य के आदर्शों को निहारते रहते हैं, मोहित होते रहते हैं।

कस्बों, छोटे नगरों तक में पहुँच गये ब्यूटीपार्लर बहुत-सी स्त्रियों के लिए दैनिक, साप्ताहिक और पाक्षिक जरूरतें बन गये हैं। नये सौन्दर्यशास्त्र ने लोगों को अत्यधिक सचेत कर दिया है कि वे यह ख्याल रखें कि वे कैसे दिखते हैं। उसने जीवन की सफलता और उपलब्धियों को इस 'दिखने' से जोड़ दिया है।

इसने एक नया नस्लवाद पैदा किया है। हम ताजादम चमकदार चेहरे का रोब खाते हैं और मलिन चेहरों से, चाहे हमारे अपने हों, घृणा करते हैं। प्रसाधन के इस त्वचावाद ने साधन-सम्पन्न को आकर्षक बना दिया है, सम्पन्नता के बदबूदार ठीहों को कमनीय बना डाला है। दिल्ली में साधारण घूरों को दिल्ली प्रशासन टाइलों से इसीलिए सजाता है ताकि गंदगी छिपी रहे। रंगीन बदबू अगर आये भी तो रहस्य की तरह अनिवर्चनीय बनी रहे। जो बात घूरे के बारे में सच है। वह चेहरे के बारे में भी सच है। परम्परागत रूप में सुदूर चेहरे, अनेक कुरूप चेहरों की चमक के आगे फीके लगते हैं। प्रसाधन सामग्री ने कुरूपता कुछ ऐसे मिटायी है कि हर चेहरा एक-सा नजर आता है। इस क्रम में यह तो हुआ कि जिन्हें पुराने किस्म के नस्लवादी काला, नकटा, चुंधा आदि कह कर स्वयं को श्रेष्ठ माना करते थे, अवाक् हुए हैं, किन्तु यह भी हुआ है कि चेहरों की कुदरती विविधता गायब कर दी गयी है। सौन्दर्यीकरण की इस मुहिम में नाक, आँख, केश, होठ आदि इच्छानुसार बनाये या बिगाड़े जा सकते हैं।

त्वचा और चेहरे के सौन्दर्यीकरण की इस मुहिम की सबसे बड़ी शिकार स्त्री है। उसे मानवीय अधिकार और सम्मान देने की जगह एक आकर्षक वस्तु में बदल दिया गया है। हर विज्ञापन में, यहाँ तक कि टायर या पेंट के विज्ञापन में भी स्त्री बैठा दी गयी है। वही विक्रेता है, वही खरीदार। विज्ञापन जगत में स्त्री एक 'अति'

Scanned by CamScanner

की तरह है। यह अति विज्ञापनशास्त्र की एक मात्र उपलब्धि है। स्त्री विज्ञापनों का सबसे बड़ा औजार है। इसलिए भी, शायद स्त्रियों का होना इतना सहज लगता है कि उपभोक्ता आसानी से ढेर हो जाता है। प्रसाधन सामग्री के विज्ञापनों के देहवाद ने स्त्री देह को आकर्षक बना कर चौराहे पर टाँग दिया है। इसे सच का एक पहलू कहा जा सकता है। स्त्री के प्रति तमाम परम्परागत बोध और प्रतिक्रियाओं को, किसी कानून या आन्दोलन ने उतना झटका नहीं दिया जितना विज्ञापनों ने, खासकर प्रसाधन सामाग्री के विज्ञापनों ने दिया है। यह सच का दूसरा पहलू है। विज्ञापनों ने स्त्री को एक नये सौन्दर्यशास्त्र का औजार बनाते हुए उसके शोषण के नये आयाम खोले हैं। किन्तु यह भी सच है कि समाज में स्त्री की दावेदारी को बढ़ाया है। हर तरफ दिखनेवाली स्त्री की छवि स्त्रियों को चौकों-चूल्हों से बाहर निकालने में किसी हद तक मददगार भी हुई है। जिन समाजों में परदा प्रथा है, वहाँ स्त्री-छवि के हमले से पैदा होने वाले सांस्कृतिक झटकों को देखा जा सकता है कि कैसे विज्ञापन समाज में एक नया उपद्रव पैदा करते हैं और दृष्टिकोण बदलते हैं।

प्रसाधन सामग्री की क्रान्ति ने हमारे समाज के लगभग सभी स्तरों को चपेट में ले लिया है। त्वचा और चेहरे भर के सौन्दर्यशास्त्र ने भले स्त्री को एक निर्लज्ज प्रतीक में ढाल कर पुरातन आत्माओं को कष्ट दिया हो, किन्तु उसने स्त्री को एक कृत्रिम व्यक्तित्व भी दिया है जो 'सूर्यपश्या' की लाजवंती की लाज को बंधन नहीं मानता। समाजशास्त्री ऐसा मानते हैं। हम हजार नाक-भौं सिकोड़ें, चिढ़ें-चिल्लाएँ, किन्तु प्रसाधन सामग्री और विज्ञापन ने मिल कर हमें एक नया रूप सौन्दर्य दिया है जिसके साथ हमारे रिश्ते अभी तक सामान्य नहीं बने हैं। मन ही मन हम चाहते हैं कि वह आकर्षक स्त्री हमारे पास हो जो एक महक में नहा रही है, किन्तु प्रकटत: हम वैसा कभी नहीं कहते। हम इस नये रूप-सौन्दर्यवाद के शिकार हो चुके हैं। वह इतना हावी है कि विवाह से पहले या पार्टी में जाने से पहले हम ब्यूटी पार्लर जाते हैं और 'प्रेजेंटबिल' हो कर जाते हैं। नये सौन्दर्यशास्त्र ने देह के सौन्दर्य को ही एक मात्र सौन्दय सिद्ध किया है और हमारे समाज ने उसे चुपके से बहुत दूर तक स्वीकार भी कर लिया है। जितना आकर्षण आज हमारे समाज में ग्लैमर, चकाचौंध का है, उतना चिन्तन और विचार का नहीं है।

डॉ. एन.एल. रामनाथन

डॉ. रामनाथन का जन्म 1927 ई. में केरल में हुआ था। कोचीन से आरम्भिक शिक्षा पाने के बाद आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से भौतिकी में एम.एस-सी. की उपाधि प्राप्त की। बंगलौर तथा कलकत्ता में रहते हुए आपने भौतिकी और पर्यावरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण शोध कार्य किया। जादवपुर विश्वविद्यालय से इन्हें पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

रसायन और हमारा पर्यावरण

रचना सार : प्रस्तुत लेख में लेखक ने रासायनिक पदार्थों से होनेवाले पर्यावरण प्रदूषण तथा उनके घातक प्रभावों को वर्णित किया है। आज का युग रसायनों का ही युग है। पृथ्वी पर जीव जन्तुओं का अस्तित्व रसायनों के कारण ही है। हमारे जीवन में आरम्भ से ही अनेक खतरे रहे हैं। रसायन भी हमारे लिए अनेक खतरे पैदा करते हैं। डी.डी.टी., मरकरी सेल, सीसा, सल्फरडाइऑक्साइड आदि ऐसे ही तत्त्व हैं। रसायनों के विषय में हमें जानकारी होनी चाहिए। इनके लाभ तथा हानियों के प्रति सजग रहते हुए हमें इनका प्रयोग करना चाहिए।

Scanned by CamScanner

रसायन और हमारा पर्यावरण

हम रसायनों के युग में रह रहे हैं। हमारे पर्यावरण की सारी वस्तुएँ और हम सब, रासायनिक यौगिकों के बने हुए हैं। हवा, मिट्टी, पानी, खाना, वनस्पति और जीव-जंतु ये सब अजूबे जीवन की रासायनिक सच्चाई ने पैदा किए हैं। प्रकृति में सैकड़ों-हजारों रासायनिक पदार्थ हैं। रसायन न होते तो धरती पर जीवन भी नहीं होता। पानी, जो जीवन का आधार है, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बना एक रासायनिक यौगिक है। मधुर-मीठी चीनी, कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बनी है। कोयला और तेल, बीमारियों से मुक्ति दिलाने वाली औषधियाँ, एंटीबायोटिक्स, एस्प्रीन और पेनिसिलीन, अनाज, सब्जियाँ, फल और मेवे—सभी तो रसायन हैं।

जीवन जोखिम से भरा है, गुफा-मानव ने जब भी आग जलाई, उसने जल जाने का खतरा उठाया। जीवनयापन के आधुनिक तरीकों ने कुछ खतरों को कम किया है, पर कुछ खतरे अनेक गुना बढ़ गए हैं। ये खतरे नुकसान और शारीरिक चोट के रूप में हैं। हम सभी अपने दैनिक जीवन में जोखिम उठाते हैं। जैसे जब हम सड़क पार करते हैं, स्टोव जलाते हैं, कार में बैठते हैं, खेलते हैं, पालतू जानवरों को दुलारते हैं, घरेलू काम-काज करते हैं, या केवल पेड़ के नीचे बैठे होते हैं, तो हम जोखिम उठा रहे होते हैं। इन जोखिमों में से कुछ तात्कालिक हैं, जैसे जलने का, गिरने का या अपने ऊपर कुछ गिर जाने का खतरा। कुछ खतरे ऐसे हैं जिनके प्रभाव लम्बे समय के बाद सामने आते हैं जैसे लम्बे समय तक शोर-गुल वाले पर्यावरण में रहने वाले व्यक्तियों की श्रवण शक्ति कम हो जाती है।

क्या रसायन भी जोखिम उत्पन्न करते हैं? स्पष्ट है कि कुछ अवश्य करते हैं। उनमें से अनेक बहुत अधिक जहरीले हैं, कुछ प्रचंड विस्फोट करते हैं और कुछ अन्य अचानक आग पकड़ लेते हैं, ये रसायनों के कुछ तात्कालिक 'उग्र' खतरे हैं। रसायनों में कुछ दीर्घकालिक खतरे भी होते हैं, क्योंकि कुछ रसायनों के सम्पर्क में अधिक समय तक रहने पर, चाहे उन रसायनों का स्तर लेशमात्र ही क्यों न हो, शरीर में बीमारियाँ पैदा हो सकती हैं।

वास्तव में रसायनों के बारे में यह कहना शायद गलत न हो कि जो रसायन जितना अधिक जहरीला या खतरनाक होता है, उसका उपयोग आज उतना ही सुरक्षित है, क्योंकि लोग उसके बारे में पहले से सावधान होते हैं और इसलिए इन्हें इस्तेमाल करते वक्त काफी सतर्क रहते हैं।

लेकिन अपेक्षाकृत कम जहरीले रसायनों के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती है। रसायनों के लम्बे समय के बाद उजागर होने वाले प्रभाव, दीर्घकालिक खतरे, अभी हाल ही में पहचानी गई समस्या है, कुछ रसायन उस पीढ़ी को तो प्रभावित नहीं करते जो उसके सम्पर्क में रहती है पर उनके प्रभाव अगली या उससे भी अगली पीढ़ी को झेलने पड़ते हैं। ऐस्बेस्टस ने, जिसे हमने एक सुरक्षित पदार्थ समझा था और जो अग्नि को भी सह सकता है, अपने कैंसर पैदा करने के अवगुण से हमें आश्चर्य में डाल दिया। पोलीक्लोरीनेटिड बाइफेनिल, जो अपने परावैद्युत (डाई-इलेक्ट्रिक गुण के कारण जाने जाते हैं, वातावरण में धीरे-धीरे इकट्ठे होते जाते हैं, और एक लम्बे समय के बाद जीवों, मछलियों और यहाँ तक कि मनुष्यों के लिए भी खतरा उत्पन्न कर देते हैं। एक अन्य गजब के रसायन, डी.डी.टी. को तब खतरनाक करार दिया गया जब रचैल कार्सन ने अपनी पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' में इसके अवगुण बखाने। कास्टिक सोडा के उत्पादन में काम आने वाली मरकरी सेल प्रौद्योगिकी दो दशक पहले तक बड़े मजे से इस्तेमाल की जाती रही, जब तक कि विश्व के सामने जापान में मिनामाटा की मछली खाने वाली आबादी में, अपंग बना देने वाला और आमतौर पर घातक सिद्ध होने वाला स्नायु रोग फैलने की घटना सामने नहीं आई। यह रोग पानी में बहि:स्राव के रूप में बहाए जाने वाले मरकरी के कारण फैल रहा था। इसका मेथिल मरकरी में जैविक परिवर्तन हो रहा था और मछलियाँ उसे मनुष्य में पहुँचा रही थीं।

हमारा आधुनिक औद्योगिक अनुभव, प्रतिदिन इस्तेमाल होने वाले रसायनों के दीर्घकालिक खतरों से भरा पड़ा है, इन रसायनों में भारी धातुएँ कार्बनिक विलायक, जहरीली वाष्प और गैसीय उत्सर्जक शामिल हैं। इनमें से अनेक प्रदूषकों को हम भोजन और पानी के साथ अपने पेट में अथवा साँस के साथ अपने फेफड़ों में ले जाते हैं। दुर्भाग्य से वायु प्रदूषण एक घरेलू शब्द बन गया है। कुछ ऐसे रसायन भी मौजूद हैं जो हमारी सही सलामत खाल से होते हुए हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

सीसा यानी लेड एक सर्वव्यापी विष है। सल्फर डाइऑक्साइड सब जगह पाई जाती है। हमारे लगभग सभी खाद्य पदार्थों में कीटनाशक दवाइयों के अवशेष पहुँच चुके हैं। इनमें से अधिकतर रसायनों के जहरीलेपन के बारे में हमें जानकारी

Scanned by CamScanner

है, पर फिर भी उनसे जुड़े खतरों के बारे में वैज्ञानिकों की अलग-अलग राय है, पर इस बात से सभी सहमत हैं कि रसायनों के सम्पर्क में रह कर काम करने वाले कर्मचारियों को उनसे सुरक्षा प्रदान करने और आम जनता तथा पर्यावरण को निम्न स्तरीय प्रदूषण से बचाने के लिए कदम उठाये जाने चाहिए। रासायनिक उत्पादों से निश्चित सुरक्षा पाने और पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हमें और अधिक जानकारी हासिल करने की जरूरत है।

सबसे पहले यह जरूरी है कि खतरों को पहचाना जाए। इसके बाद हमें अपने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वर्तमान ज्ञान के आधार पर उन्हें निम्नतम स्तर तक कम करना चाहिए, किन्तु ज्ञान का कितना भी ऊँचा स्तर अथवा सरकारी कानून इन जोखिमों को पूरी तरह दूर नहीं कर सकते। क्या कोई दुनिया की उस स्थिति की कल्पना कर सकता है जिसमें सभी संभाव्य खतरनाक रसायनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया हो? ऐसा कुछ भी तो नहीं है जिससे हानि हो सकने की संभावना न हो। एक पुरानी कहावत है, जिसका आशय है "अति से तो अमृत भी जहर बन जाता है।"

हमें जोखिमों पर अपने निर्णय खतरे की संभाव्यता के आधार पर जोखिम-लाभ विश्लेषण की संकल्पना को ध्यान में रखकर लेने होंगे। यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें काले को विशुद्ध काला और सफेद को विशुद्ध सफेद बतलाया जा सके अथवा स्पष्ट 'हाँ' या 'न' कहा जा सके। यह किया कैसे जाए? और क्या यह किया जाना आवश्यक है भी? इस बारे में लोगों की रायों में बहुत अन्तर होता है। इसलिए 'ग्राह्य जोखिम' और 'अग्राह्य जोखिम' शब्दों का इस्तेमाल होने लगा है।

खेती में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशी मनुष्य के लिए किसी न किसी हद तक जहरीले हैं, इन्हें पर्यावरण में जानबूझ कर छिड़का जाता है, किन्तु इसके लिए इन्हें भली-भाँति परखा जाता है और इस्तेमाल की अनुमति दी जाती है। कारण, इससे फसल की वृद्धि के रूप में अधिक लाभ प्राप्त होता है। रासायनिक कीटनाशियों के इस तरह से नियंत्रित इस्तेमाल के खतरे ग्राह्य जोखिम हैं, लेकिन जोखिम का मूल्यांकन समय अथवा परिस्थितियों के साथ बदल सकता है। विकसित देशों में सन् 1972 ई. के बाद डी.डी.टी. पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, किन्तु विकासशील देश डी.डी.टी. के लगातार इस्तेमाल में आज भी लाभ देख रहे हैं।

कुछ रसायन जो अपने आप में सुरक्षित हैं, उस समय हानि पहुँचाते हैं जब वे अन्य पदार्थों से क्रिया कर लेते हैं या फिर जब वे अन्य पदार्थों के साथ मिलने के बाद अपना जहरीलापन छोड़ देते हैं। सोडियम और क्लोरीन दोनों खतरनाक हैं, किन्तु साधारण नमक, सोडियम क्लोराइड जीवन के लिए जरूरी है। दूसरी ओर समुद्र का

पानी पीने की दृष्टि से अत्यन्त जहरीला है और लम्बे समय तक नमक का सेवन रक्तचाप बढ़ने का कारण बन जाता है, जो एक दीर्घकालिक जोखिम है। यहाँ पर मात्रा और जहरीलापन—दोनों तथ्य जोखिम के अर्थ को प्रभावित करते हैं।

कैंसर सबसे भयानक रोग है। कहा जाता है कि कैंसर अधिकतर पर्यावरणीय रसायनों के प्रति उद्भासन के कारण होता है। यह तथ्य है या यूँ ही उड़ाई गई बात? कैंसर से सम्बन्धित आँकड़े आज अविश्वसनीय हैं। ऐसी रिपोर्ट भी मौजूद है जो संकेत देती है कि कैंसर के मामले बढ़ रहे हैं, किन्तु अन्य रिपोर्टों के अनुसार कैंसर के मामले कम होते जा रहे हैं। पिछले 25 वर्षों में पेट के कैंसर के मामलों में कमी आई है, किन्तु फेफड़ों का कैंसर बढ़ा है।

आमतौर पर यह बताया गया है कि कैंसर के 80 प्रतिशत मामले पर्यावरणीय कारकों से सम्बन्धित हैं। इसका अर्थ यह लगा लिया जाता है कि सारा दोष संश्लेषित रसायनों और वायु प्रदूषण का है। तथ्य जबकि यह है कि ये आँकड़े केवल अर्ध अनुमान आधारित हैं, उनमें उन सभी कैंसरों के मामलों को भी गिना जाता है जो आनुवंशिक नहीं हैं। पर्यावरणीय कारकों में तम्बाकू, शराब, सूरज की रोशनी और स्वच्छता भी शामिल है और प्रदूषण भी। प्रत्यक्ष रूप से काम-काज के वातावरण के कारण उत्पन्न कैंसर, कुल कैंसरों के मामलों का एक से पाँच प्रतिशत है।

रसायनों के बारे में, समाज के प्रति उनके लाभों और खतरों के बारे में निर्णय कौन करे? इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण हैं जो आदमी सिगरेट पीता है या शराब का सेवन करता है और अपनी सेहत के प्रति लापरवाह है, जोखिमों के सम्बन्ध में यह अपना ही निर्णय ले रहा है। दूसरी ओर, सामाजिक निर्णय सरकार को लेने होते हैं। किन्तु सरकार विज्ञान से लेकर सामान्य बुद्धि तक, सभी उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग करके यह निर्णय किस प्रकार ले? रसायनों के इस्तेमाल पर सरकारी निर्णय, कानून और नियम बढ़ते जा रहे हैं क्योंकि जनता के स्वास्थ्य की सुरक्षा सरकार का कानूनी उत्तरदायित्व है।

रसायनों के सम्बन्ध में सूचनाओं का विश्लेषण आसान नहीं है। सभी प्रकार के लोगों का इस सूचना-भंडार में योगदान होता है। इनमें अक्सर असहमतियाँ होती हैं। मोटर-गाड़ियों की गति सीमा कितनी होनी चाहिए? कोई रसायन कारखाना, रोजगार, उत्पादन और सेवाएँ उपलब्ध करने के लिए बनाया जाना चाहिए या उसे इसलिए नहीं बनाया जाना चाहिए क्योंकि वह प्रदूषण फैलाता है? ये सब रोज के प्रश्न हैं। हमारे निर्णय पर भावनाएँ और आशंकाएँ हावी हो जाती हैं। सही वैज्ञानिक तथ्य अधिकतर मौजूद नहीं होते या पर्याप्त नहीं होते। रसायनों के जोखिम के प्रति निर्णय लेना कभी भी आसान नहीं है, किन्तु आवश्यक हमेशा है। जोखिमों और लाभों के बारे में निर्णय लेने वाले तो हम सब ही हैं।

Scanned by CamScanner

रसायन हमारी आवश्यकता है। ये हमारे पर्यावरण में हमेशा मौजूद हैं, इनकी सूक्ष्म अथवा लेश मात्रा भी 'अर्थपूर्ण' हो सकती है। इन लेश मात्रा वाले रसायनों के बारे में हमें और अधिक जानने की जरूरत है। हमें इस बारे में भी और जानकारी हासिल करनी है कि इनसे क्या हो सकता है। जब तक कोई रसायन बिना किसी संदिग्धता के गैर जरूरी और हानिकर सिद्ध न हो जाए, तब तक उसका इस्तेमाल जारी रहने देना चाहिए। लेकिन यह इस्तेमाल सुरक्षित ढंग से और सुरक्षित मात्रा में होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि संभावी लाभकारी पदार्थों का इस्तेमाल, उनके गलत इस्तेमाल से हो सकने वाली सभी हानियों को पूरी तरह जानते-समझते हुए, पूरे विवेक के साथ किया जाना चाहिए। प्रश्न उठता है कि क्या हम ऐसा करने में सफल हो सकते हैं? बहुत से मामलों में ऐसा किया जा चुका है और यदि हम कोशिश करें तो ऐसा अवश्य कर सकते हैं। इसमें शक नहीं, हमें लगातार सतर्क रहना होगा। रासायनिक सुरक्षा को प्रतिदिन का कार्य मान लिया जाना चाहिए।

Scanned by CamScanner